CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कृष्णदास संस्कृत सीरीज ६७

कुमारसम्भवम्

सान्वय-'सुधा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकार:

पं० परमेश्वरदीन पाण्डेय:

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कृष्णदास संस्कृत सीरीज

६७

महाकविकालिदासविरचितं

कुमारसम्भवम्

'सुधा'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकार:

पं० परमेश्वरदीन पाण्डेय:

एम० ए० (संस्कृत-हिन्दी), साहित्याचार्य:, साहित्यरत्नम्

(सर्गः ५)

SRI VIDYA BHARATHI BOOK CENTRE
Bharathi Street,
SRINGERI - 577 139.

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९९८

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : तृतीय, विक्रम संवत् २०५५

मूल्य : रु० १५.००

© KRISHNADAS ACADEMY

Oriental Publishers and Distributors

Post Box No. 1118

K. 37/118, Gopal Mandir Lane, Varanasi-221001

(INDIA)

Phone : 335020

अपरञ्च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मंदिर लेन

गोलघर (मैदागिन) के पास

पो० बा० १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

फोन { आफिस ३३३४५८
आवास ३३४०३२ एवं ३३५०२०

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पञ्चम सर्ग

इस प्रकार शिवजी द्वारा सामने ही कामदेव को भस्म किया गया देखकर पार्वती निराश हो गई तथा शिव-प्राप्ति का अन्य उपाय न देखकर उन्होंने तप करने का निश्चय किया। माता मेना ने तप की कठिनता का वर्णन करते हुए समझाया कि सभी अभीष्ट देवप्रतिमाएँ तुम्हारे घर पर ही स्थापित हैं फिर तप करने की तुम्हारी यह अवस्था भी तो नहीं है ? पर मेना उसे तप के दृढ निश्चय से हटा नहीं सकी। अन्ततः माता पिता से आज्ञा लेकर विजया तथा मालिनी सखियों के साथ गौरी-शिखर पर तप करने चली गई। उसने रेशमी-वस्त्र त्याग कर वल्कल धारण कर लिये, बहुमूल्य आभूषणों के स्थान पर मौञ्जी तथा अक्षमाला ग्रहण कर ली। वह कोमल शय्या के स्थान पर कठोर भूमि पर सोती, ग्रीष्म ऋतु में भी पञ्चाग्नि सेवन करती, वर्षा में भी मैदान में रहती थीं। शीतकालीन रात्रि में भी जल में खड़ी होकर तप करती थी। भोजन को त्यागकर वह वृक्षों के पत्ते खाने लगीं, फिर पत्ते खाना भी छोड़ दिया जिससे उनका एक नाम अपर्णा भी पड़ गया। इस प्रकार कठोर तप करती हुई पार्वती के आश्रम पर एक दिन एक जटाधारी ब्रह्मचारी ने प्रवेश किया। सखियों सहित पार्वती ने उठकर उसका आतिथ्य सत्कार किये जाने के पश्चात् ब्रह्मचारी ने उनसे तपस्या करने का कारण पूछा तथा अपनी पूर्वोपार्जित तपस्या के अर्धभाग से अभीष्ट फल पाने को पार्वती से कहा। ऐसा पूछे जाने पर कुछ भी कह सकने में असमर्थ पार्वती ने अपनी वयस्या की ओर टकटकी बँधी दृष्टि से देखा। तब संकेत पाकर सखी ने ब्रह्मचारी वेषधारी शिव से कहा—मेरी सखी शिव को पतिरूप में प्राप्त करने के लिए इस घोर तपस्या में लगी हुई है। यह सुनकर छद्मवेषधारी शिवजी अनेक प्रकार से शिव की निन्दा करने लगे—हे गौरि ! अमङ्गलाचारी, सर्पों का हार पहने, श्मशान की भस्म रमाये, तीन नेत्रों वाले, गजाजिन धारण करने वाले शिवजी को, जिनके जन्म का भी ठिकाना नहीं है, पाने के लिए इस प्रकार तप करके शरीर को नष्ट करना ठीक नहीं है। वर में जो गुण होने चाहिए उनमें से कोई भी तो शिव में नहीं है। उनके पास पहनने को वस्त्र तक नहीं। सवारी उनका बूढ़ा नदिया है। श्मशानवासी भांग-धतूरा खाने वाले

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वह किसी प्रकार तुम्हारे योग्य नहीं हैं। उनसे विवाह कर टपकते खून वाले गजचर्म को पहने बूढ़े नदिये पर बिठलाकर जब वह तुम्हें ले चलेंगे तो सत्पुरुष देखकर मजाक बनायेंगे।

इतना कहने पर भी पार्वती थोड़ी भी विचलित नहीं हुई बल्कि रोषपूर्ण वचनों में वह ब्रह्मचारी से कहने लगीं—वास्तव में आप शिवजी के असली स्वरूप को जानते ही नहीं हैं, इसीलिए इस प्रकार कहते हैं। मूर्खों का स्वभाव ही महापुरुषों की निन्दा करने का होता है। लोकत्रयरक्षक वासनारहित शिव जी को इन सब सांसारिक वस्तुओं की आवश्यकता ही कहाँ है ? वह चाहे विभूषणयुक्त हैं या सर्पधारण करने वाले, दुकूलधारी हैं या गजचर्म लपेटने वाले, इन्दुशेखर हैं या कपाली, उन्हें कोई समझ नहीं सकता है। तुमने शिवजी में जितने अवगुण गिनाये हैं, वास्तव में उनमें एक ही सत्य कहा है—जिन शिवजी को वेद ब्रह्मा की सृष्टि का भी कर्ता बताते हैं; उनके जन्म के विषय में कोई दूसरा क्या जान सकता है ? अस्तु, विवाद करना व्यर्थ है। तुमने जैसा शिवजी को प्रमाणित किया, यदि वह वैसे भी हों तब भी मेरा हृदय उन्हीं पर निश्चल है, मुझे लोकनिन्दा का भी भय नहीं है।

इतना कहकर पार्वतीजी पुन: अपनी सखी से कहने लगी कि हे सखि ! इस वटु के ओंठ अभी कुछ और कहने के लिए फड़क रहे हैं, अत: इसे यहाँ से निकाल दो। महापुरुषों की निन्दा करने वाला ही केवल पापभागी नहीं होता है बल्कि जो उसे सुनता है वह भी पापभाक् होता है अथवा मैं स्वयम् यहाँ से अन्यत्र चली जाती हूँ, ऐसा कहकर ज्योंही पार्वतीजी चलने को हुई कि शिवजी अपने प्रकृतरूप में मुस्कराते हुए प्रकट हो गये तथा पार्वतीजी को जाने से रोक लिया। पार्वती जी भी समक्ष शिवजी को देखकर कांपते हुए सिन्धुधार में पड़े पर्वत वाली नदी की भाँति न तो आगे चल ही सकीं और न ठहर ही सकीं। तब शिवजी कहने लगे—हे अवनताङ्गि ! तुम्हारी तपस्या के द्वारा आज से मैं तुम्हारा क्रीत-दास (खरीदा हुआ गुलाम) बन गया हूँ। भगवान् चन्द्रमौलि के ऐसा कहने पर तत्काल पार्वती जी का तपोजनित सम्पूर्ण क्लेश दूर हो गया, क्योंकि कार्य सफल हो जाने पर क्लेश नहीं मालूम पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुमारसम्भवम्

सान्वय 'सुधा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

पञ्चमः सर्गः

तथा समक्षं दहता मनोभवं पिनाकिना भग्नमनोरथा सती ।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ॥१॥

अन्वयः—पार्वती तथा समक्षं मनोभवं दहता पिनाकिना भग्नमनोरथा सती हृदयेन रूपं निनिन्द । हि चारुता प्रियेषु सौभाग्यफला भवति ।

व्याख्या--तथेति । पार्वती–पर्वतस्यापत्यं स्त्री पार्वती=उमा ('उमा कात्यायनी गौरी काली हैमवतीश्वरी' इत्यमरः) । तथा=तथाविधम् । समक्षं= पुरः । मनोभवं–मनसा भवं मनोभवं=मनोजातं कामम् । दहता=भस्मीकरणेन । पिनाकिना–पिनाकमस्यास्तीति पिनाकी, तेन=महादेवेन । भग्नमनोरथा= भग्नः मनोरथो यस्याः सा=नष्टाभिलाषा, सती=भवन्ती । हृदयेन=चेतसा । रूपं=सौन्दर्यम् ('चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तम्' इत्यमरः) । निनिन्द=निन्दां चकार । हि=यतः । चारुता=रमणीयता । प्रियेषु=वल्लभेषु । सौभाग्यफला– सौभाग्यं फलं यस्याः सा=सौभाग्यफलवती । भवति । अत्र अर्थान्तरन्यासोऽ- लङ्कारः । वंशस्थवृत्तम् । तद्यथा–जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ।

सरलार्थः—हरकोपानलेन कामं स्वसमक्षं भस्मीभवन्तमवलोक्य पार्वती नष्टाभिलाषा हृदयेन स्वसौन्दर्यं निन्दितवती । यतः सौन्दर्यं प्रियतमेषु सौभाग्य- फलदायि भवति ।

हिन्दी—पार्वतीजी शिवजी के क्रोधानल से कामदेव को अपने समक्ष ही भस्म होता हुआ देखकर शिवजी की पत्नी बनने की अभिलाषा नष्ट हुई जान कर हृदय से अपने रूपलावण्य की निन्दा करने लगी। क्योंकि सौन्दर्य ही प्रियतमों को प्रसन्न करने (रिझाने) का साधन होता है ॥१॥

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः ॥२॥

अन्वयः—सा समाधिम् आस्थाय तपोभिः आत्मनः अवन्ध्यरूपतां कर्तुम् इयेष, अन्यथा तथाविधं प्रेम तादृशः पतिः च तद्द्वयं कथं वा अवाप्यते।

व्याख्या--इयेषेति। सा=पार्वती। समाधिम्=एकाग्रताम्। आस्थाय=स्थित्वा। तपोभिः=तपश्चरणैः। आत्मनः=स्वस्य। अवन्ध्यरूपताम्—अवन्ध्यं रूपं यस्याः सा अवन्ध्यरूपा, तस्या भावः, ताम्=सफलसुन्दरताम्। कर्तुम्=विधातुम्। इयेष=इच्छितवती। अन्यथा=अन्यप्रकारेण। तथाविधं=तादृशम्। प्रेम=अनुरागः। तादृशः=तथाविधः। पतिः=भर्ता च। तद्द्वयम्=तदुभयम् कथं=केन प्रकारेण वा। अवाप्यते=लभ्यते।

सरलार्थः—पार्वतीध्यानावधारणोपायेन तपश्चरणैः सफलसौन्दर्यं कर्तुमभिलषितवती। तदभावे उत्कृष्टं प्रेम, शिवसदृशः स्वामी, उभयश्च केन प्रकारेण प्राप्यते अर्थात् एतदसम्भवमस्ति।

हिन्दी—वह समाधि लगाकर तपस्या के द्वारा अपनी सुन्दरता को सफल बनाने (शिवपतिवरण) की चेष्टा करने लगीं। इसके बिना उत्कृष्ट पतिप्रेम तथा शिवसदृश पति दोनों चीजें कैसे प्राप्त की जा सकती हैं?

टिप्पणी—उत्कृष्ट प्रेम तथा शिवसदृश पति पाने जैसे दुष्कर कार्यों में सफलता केवल तपस्या द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है, जैसा कि मनुजी ने भी कहा है—

यद् दुस्तरं यद् दुरापं यद् दुर्गं यच्च दुष्करम्।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरति-क्रमम् ॥ (मनुस्मृति)

निशम्य चैनां तपसे कृतोद्यमां सुतां गिरीशप्रतिसक्तमानसाम्।
उवाच मेना परिरभ्य वक्षसा निवारयन्ती महतो मुनिव्रतात् ॥३॥

अन्वयः—मेना गिरीशप्रतिसक्तमानसां तपसे कृतोद्यमां सुतां निशम्य एनां वक्षसा परिरभ्य महतः मुनिव्रतात् निवारयन्ती (सती) उवाच।

व्याख्या—निशम्येति। मेना=हिमालयपत्नी, पार्वतीमाता। गिरीशप्रतिसक्तमानसां—गिरीशे प्रतिसक्तम्=आसक्तं मनः=चेतः यस्याः सा, ताम्।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तपसे =तपस्यायै । कृतोद्यमां— कृतः उद्यमो यया सा ताम् = विहितप्रयत्नाम् । सुतां =पुत्रीं पार्वतीम् । निशम्य=श्रुत्वा । एनाम्=एताम् पार्वतीम् । वक्षसा= वक्षःस्थलेन । परिरभ्य=आलिङ्गय । महतः =बृहतः । मुनिव्रतात्-मुनीनां व्रतं मुनिव्रतं तस्मात् = तपश्चरणात् । निवारयन्ती=निषिध्यन्ती सती । उवाच= अवोचत् ।

सरलार्थः—पार्वतीजननी मेना शिवासक्तचित्तां तपस्यायै कृतप्रयत्नां स्वपुत्रीं श्रुत्वा तां पार्वतीं वक्षसः आलिंग्य कठिनमुनिव्रतात् (तपश्चरणात्) निवारयन्ती तामवोचत् ।

हिन्दी---हिमालय-पत्नी मेना शिवजी के प्रति आसक्त-चित्तवाली तपस्या के लिये प्रयत्न करती हुई अपनी पुत्री पार्वती को सुनकर उन्हें (पार्वती को) छाती से लगाकर कठोर मुनिव्रत अर्थात तपस्या से रोकने के लिए इस प्रकार कहने लगी ।। ३ ।।

मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवतास्तपः क्व वत्से ! क्व च तावकं वपुः ।
पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः ।। ४ ।।

अन्वयः--हे वत्से ! मनीषिताः देवताः गृहेषु सन्ति । तपः क्व ? तावकं वपुः च क्व ? पेलवं शिरीषपुष्पं भ्रमरस्य पदं सहेत, पतत्रिणः पुनः न ।

व्याख्या—मनीषिता इति । हे वत्से=हे सुते ! मनीषिताः—मनसः ईषिता मनीषिताः=अभीष्टाः । देवताः=देवाः । गृहेषु=गेहेषु ('गृहाः पुंसि च निकाय-निलयालयाः' इत्यमरः) । सन्ति=वर्तन्ते । तपः=तपस्या । क्व=कुत्र । तावकं= त्वदीयम् । वपुः=शरीरम् । क्व=कुत्र । पेलवं=कोमलम् । शिरीषपुष्पं=शिरीष-सुमनम् । भ्रमरस्य=मधुपस्य । पदं=चरणस्थितिम् । सहेत=सोढुं शक्नुयात् । पतत्रिणः=पक्षिणः ('पतत्रि पत्रि पतंग पतत्पत्ररथाण्डजाः' इत्यमरः) । पुनः न =न सोढुं शक्नुयुः । अत्र विषमालङ्कारः ।

सरलार्थः—हे पुत्रि ! गेहेषु अभीष्टाः देवाः सन्ति, तान् एवाराधय । कठोरतपः तवात्यन्तकोमलेन शरीरेण नितान्तमसाध्यमस्ति । यथा कोमलं शिरीषसुमनं मधुपचरणस्थितिं सोढुं समर्थः पक्षिणः पदस्थितिं कदापि न सहते ।

हिन्दी--हे वत्से ! घर में (अनेकों) अभीष्ट-देवता स्थापित हैं, तुम उन्हीं की पूजा करो । कहाँ कठोर तप और कहाँ तुम्हारी यह किशोर

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अवस्था ? शिरीष पुष्प के ऊपर केवल भौंरा ही बैठ सकता है अन्य पक्षियों का बैठना वह सहन नहीं कर सकता है ॥ ४ ॥

इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुतां शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात् ।
क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ॥ ५ ॥

अन्वयः—इति अनुशासती मेना ध्रुवेच्छां सुताम् उद्यमात् नियन्तुं न शशाक । ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः निम्नाभिमुखं पयः च कः प्रतीपयेत् ।

व्याख्या—इति ध्रुवेच्छामिति । इति=एवम् । अनुशासती=उपदिशन्ती । मेना=पार्वती-जननी । ध्रुवेच्छां-ध्रुवः इच्छा यस्याः सा, ताम्=स्थिर-मनोरथाम् ('इच्छा कांक्षा स्पृहेहा तृड् वाञ्छा लिप्सा मनोरथः' इत्यमरः) । सुताम्=पुत्रीं पार्वतीम् । उद्यमात्=उद्योगात्, तपश्चरणात् । नियन्तुं=निवारयितुम् । न शशाक=समर्था न बभूव । ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं—ईप्सितश्चासौ अर्थः ईप्सितार्थः, स्थिरः निश्चयः यस्य तत्, ईप्सितार्थे स्थिरनिश्चयं तत्=अभीष्टार्थदृढनिश्चयम् । मनः=चेतः । निम्नाभिमुखं—यस्य तत्=अधोमुखम् । पयः=जलम् च । कः प्रतीपयेत्=कः प्रतिकूलयेत्, न कश्चिदिति । अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः ।

सरलार्थः—एवमुपदिशन्ती पार्वतीजननी मेना दृढनिश्चयां सुतां पार्वतीं निवारयितुं समर्था न बभूव । अभीष्टार्थस्थिरं मनः निम्नगतिकं जलञ्च कोऽपि न प्रतिकूलयति ।

हिन्दी—इस प्रकार उपदेश देती हुई मेना अटल इच्छा वाली पुत्री पार्वती को तपश्चरण से दूर नहीं कर सकी । अभीष्टार्थ के लिए स्थिर-मन तथा पानी के नीचे (ढ़लाव) की ओर के बहाव को कौन बदल सकता है ॥ ५ ॥

कदाचिदासन्नसखीमुखेन सा मनोरथज्ञं पितरं मनस्विनी ।
अयाचताऽरण्यनिवासमात्मनः फलोदयान्ताय तपःसमाधये ॥६॥

अन्वयः—कदाचित् मनस्विनी सा मनोरथज्ञं पितरम् आसन्नसखीमुखेन फलोदयान्ताय तपःसमाधये आत्मनः अरण्यनिवासम् अयाचत ।

व्याख्या—कदाचिदिति । कदाचित्=कदापि । मनस्विनी-मनः अस्यास्तीति=स्थिरचित्ता । सा=असौ पार्वती । मनोरथज्ञं—मनोरथमभीष्टम्

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जानाति इति मनोरथज्ञम्=अभिलाषज्ञातारम् । पितरम्=जनकं हिमालयम् । आसन्नसखीमुखेन—आसन्ना चासौ सखी, तस्याः मुखेन=समीपवर्तिन्यालिमुखेन ('समीपे निकटासन्नसन्निकृष्टसनीड़वत्' इत्यमरः) । ('मुखं निःसरणे वक्त्रे प्रारम्भोपाययोरपि' इत्यमरः) । ('आलिः सखी वयस्या च' इत्यमरः) । फलोदयान्ताय-फलस्योदयः फलोदयः, सः अन्तः यस्य सः, तस्मै=फलोत्पत्त्यवधये । तपःसमाधये-तपसः समाधिः तपःसमाधिस्तस्मै=तपश्चरणनियमाय । आत्मनः=स्वस्य । अरण्यनिवासम्-अरण्ये=कानने निवासः=निवसनम्, तम् ('अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्' इत्यमरः) । अयाचत=याचितवती ।

सरलार्थः—अवसरं प्राप्य पार्वती स्वसख्या निजजनकं हिमालयं फलप्राप्तिपर्यन्तं तपस्यायै वने वसितुं प्रार्थितवती ।

हिन्दी—अवसर पाकर पार्वती ने अपनी सखी द्वारा अपने पिता हिमालय से फल-प्राप्ति तक तपस्या करने के लिए वन में रहने की अनुमति माँगी ।६।

अथ पितुरादेशपूर्वकं तपोऽनुरूपस्थानप्राप्तिर्वर्ण्यते—

अथानुरूपाभिनिवेशितोषिणा कृताभ्यनुज्ञा गुरुणा गरीयसा ।
प्रजासु पश्चात्प्रथितं तदाख्यया जगाम गौरी शिखरं शिखण्डिमत् ॥७॥

अन्वयः—अथ गौरी अनुरूपाभिनिवेशतोषिणा गरीयसा गुरुणा कृताभ्यनुज्ञा सती पश्चात् प्रजासु तदाख्यया प्रथितं शिखण्डिमत् गौरीशिखरं जगाम ।

व्याख्या—अथेति । अथ=अनन्तरम् । गौरी=पार्वती । अनुरूपाभिनिवेशितोषिणा-अनुरूपश्चासौ अभिनिवेशः अनुरूपाभिनिवेशः, तेन तुष्यति इति तेन=अनुकूलाग्रहसन्तुष्टेन । गरीयसा-अतिशयेन गुरुर्गरीयान्, तेन गरीयसा=महता पूज्येन । गुरुणा=पित्रा । कृताभ्यनुज्ञा-कृता अभ्यनुज्ञा यस्यै सा=प्राप्तानुमतिः सती । पश्चात्=अनन्तरम् । प्रजासु=जनेषु । तदाख्यया=तस्याः आख्या, तया=गौरीनाम्ना । प्रथितं=प्रख्यातम् गौरीशिखरम् इति । शिखण्डिमत्-शिखण्डिभिः=मयूरैः मण्डितम् । शिखरं=शृङ्गम् । जगाम=गतवती ।

सरलार्थः—अनन्तरं पार्वती योग्याग्रहसन्तुष्टेन पूज्येन गुरुणा हिमवता प्राप्तानुदेशा सती तदनन्तरं जनेषु गौरीनाम्ना प्रसिद्धं 'गौरीशिखरं' ययौ ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिन्दी—तदनन्तर पार्वती को अपने अनुकूल पति पाने की पवित्र इच्छा जानकर सन्तुष्ट होकर पिता से आज्ञा दिये जाने के अनन्तर पार्वती लोगों में उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध गौरीशिखर पर चली गयीं।

विमुच्य सा हारमहार्यनिश्चया विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम्।
बबन्ध बालारुणबभ्रु वल्कलं पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति ॥८॥

अन्वयः—अहार्यनिश्चया सा विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनं हारं विमुच्य बालारुणबभ्रु पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति वल्कलं बबन्ध।

व्याख्या—विमुच्येति। आहार्यनिश्चया—आहार्यः=अनिवार्यः निश्चयः=निर्णयः यस्याः सा। सा=असौ पार्वती। विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनं—विलोलाश्च ता यष्टयः विलोलयष्टयः, प्रकर्षेण विलुप्तं चन्दनं तत् विलुप्तचन्दनम्; विलोलयष्टिभिः प्रविलुप्तं चन्दनं, तत्=चपलप्रतिसरप्रमृष्टचन्दनम्। हारं=मुक्तावलिम्। विमुच्य=विहाय। बालारुणबभ्रु—बालश्चासौ अरुणः बालारुणः तथा बभ्रु, तत्=बालसूर्यपिङ्गलम् ('सूरसूतोऽरुणोऽनूरुः काश्यपिर्गरुडाग्रजः' इत्यमरः)। पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति—पयोधरयोः उत्सेहः तेन विशीर्णा संहति यस्य तत्=स्तनोच्छ्रायविघटितावयवसंश्लेषम्। वल्कलम्=स्तनावरणं वल्कलम्। बबन्ध=अधारयत्।

सरलार्थः—दृढनिश्चया पार्वती स्वहरिचन्दनाङ्कितं मुक्ताहारं विमुच्य प्रातःकालीनार्कारुणं वल्कलं दधार।

हिन्दी—दृढनिश्चयवाली पार्वती जी ने अपने हरिचन्दन से अंकित मुक्ताहार का परित्याग कर प्रातःकालीन सूर्य के समान अरुण-वर्ण के वल्कल धारण किये ॥८॥

यथा प्रसिद्धैर्मधुरं शिरोरुहैर्जटाभिरप्येवमभूत्तदाननम्।
न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते ॥९॥

अन्वयः—तदाननं प्रसिद्धैः शिरोरुहैः यथा मधुरम् अभूत्। जटाभिः अपि एवं (मधुरम् अभूत्)। पङ्कजं षट्पदश्रेणिभिः एव न, किन्तु सशैवलासङ्गम् सद् अपि प्रकाशते।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याख्या—यथेति । तदाननं-तस्याः=पार्वत्याः आननं=मुखं, तत् । प्रसिद्धैः =भूषितैः । शिरोरुहैः=कचैः । ('चिकुरः कुन्तलो वालः कचः केशः शिरोरुहः' इत्यमरः) । यथा=इव । मधुरम्=प्रियम् । अभूत्=बभूव । जटाभिः=सटाभिः अपि एवं=तथा मधुरं बभूव । पङ्कजं=पद्मम् । षट्पदश्रेणिभिः—षट् पदानि येषां ते षट्पदास्तेषां श्रेणिभिः=अलिपङ्क्तिभिः । एव न=नो । किन्तु=परन्तु । सशैवलासङ्गम्-शैवलानामासङ्गस्तेन सह वर्तत इति सशैवालसङ्गम्=शैवालसम्पर्कयुक्तम् । सद् अपि प्रकाशते=प्रकाशितं भवति । प्रतिवस्तूपमालंकारः ।

सरलार्थः—पार्वत्याः मुखं विभूषितैः केशैर्येन प्रकारेण प्रियं बभूव तथा जटाभिरपि बभूव । कमलं षट्पदपंक्तिभिरेव न प्रकाशते, अपि तु शैवालसम्पर्कयुक्तं सदपि प्रकाशते ।

हिन्दी--पार्वती का मुख विभूषित केशों से जैसा सुन्दर लगता था वैसे ही जटाओं से भी सुन्दर लगने लगा । कमल भौरों की पंक्तियों से ही केवल सुन्दर नहीं लगता; बल्कि सिवार के साथ होने पर भी प्रकाशित होता है ।।९।।

प्रतिक्षणं सा कृतरोमविक्रियां व्रताय मौञ्जीं त्रिगुणां बभार याम् ।
अकारि तत्पूर्वनिबद्धया तया सरागमस्या रशनागुणास्पदम् ॥१०॥

अन्वयः—सा प्रतिक्षणं कृतरोमविक्रियां त्रिगुणां यां मौञ्जीं व्रताय बभार, तत्पूर्वनिबद्धया तया अस्याः रशनागुणास्पदं सरागम् अकारि ।

व्याख्या-प्रतिक्षणमिति । सा=पार्वती । प्रतिक्षणं=क्षणं क्षणम् । कृतरोमविक्रियां—रोम्णा विक्रियकृताकृतरोमविक्रिया, ताम्=विहितरोमाञ्चाम् । त्रिगुणां—त्रयः गुणाः यस्याः सा, ताम्=त्रिरावृत्ताम् । यां मौञ्जीम्=मुञ्जमेखलाम् । व्रताय=तपश्चरणाय । बभार=धारयामास । तत्पूर्वनिबद्धया-तदेव पूर्वं यस्य तत्, तत्पूर्वं यथा स्यात्तया निबद्धा, तया=तत् प्रथमबद्धया तया= मौञ्ज्या । अस्याः=पार्वत्याः । रशनागुणास्पदं—रशनायाः गुणः रशनागुणः, तस्यास्पदम्, रशनागुणास्पदम्=मेखलासूत्रस्थानं, जघनम् । सरागं—रागेण सहितम्=अरुणिमायुक्तम् । अकारि=कृतम् ।

सरलार्थः—पार्वती प्रतिक्षणं कृतरोमाञ्चां त्रिवृतां यां मौञ्जीं तपश्चरणाय दधार तत्प्रथमनिबद्धया तया मौञ्ज्या पार्वत्याः काञ्चीसूत्रस्थानजघनमरुणं कृतम् ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिन्दी—पार्वती जी ने प्रतिक्षण रोमाञ्चित करने वाली त्रिगुण जिस मौञ्जी को तपस्या के लिए धारण किया उसने प्रथम बार पहनने के कारण पार्वती के मेखलासूत्र (करधनी) पहनने के स्थान (जघन-प्रदेश) को अरुण बना दिया ॥१०॥

विसृष्टरागादधरान्निवर्तितः स्तनाङ्गरागारुणिताच्च कन्दुकात् ।
कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः कृतोऽक्षसूत्रप्रणयी तया करः ॥११॥

अन्वयः—तया विसृष्टरागात् अधरात् निवर्तितः स्तनाङ्गरागारुणितात् कन्दुकात् च (निवर्तितः) कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः करः अक्षसूत्रप्रणयी कृतः ।

व्याख्या—विसृष्टेति । तया=पार्वत्या । विसृष्टरागात्-विसृष्टः रागः यस्मात् सः, तस्मात्=त्यक्तरङ्गात् । अधरात्=ओष्ठात् । निवर्तितः=निवारितः । स्तनाङ्गरागारुणितात्-स्तनस्याङ्गरागः स्तनाङ्गरागः अरुणः सञ्जातः अस्य सः अरुणितः, स्तनाङ्गरागेण अरुणितः, तस्मात् स्तनाङ्गरागारुणितात्=पयोधराङ्गरक्तात् । कन्दुकात्=गेन्दुकात् ('गेन्दुकः कन्दुकः' इत्यमरः) । च निवर्तितः । कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः-कुशानामङ्कुरा कुशाङ्कुरा, तेषामादानं, तेन कुशाङ्कुरादानेन परिक्षताः अङ्गुलयः यस्य सः दर्भाङ्कुरग्रहणविक्षतकरशाखः ('अस्त्री कुशं कुथो दर्भः पवित्रम्' इत्यमरः) । करः=हस्तः । अक्षसूत्रप्रणयी—अक्षाणां सूत्रमक्षसूत्रम्, प्रणयः अस्यास्तीति प्रणयी, अक्षसूत्रस्य प्रणयी तथाविधः=जयमालासहचरः । कृतः=विहितः ।

सरलार्थः-पार्वत्यापरित्यक्तरङ्गादोष्ठात् निवारितः पयोधराङ्गरागारुणिमायाः कन्दुकाच्च निवारितः दर्भाङ्कुरग्रहणक्षतकरशाखः हस्तः जपमालाप्रियः विहितः ।

हिन्दी—पार्वती ने होठों में अङ्गराग लगाना, स्तनों पर अङ्गराग का लेप करना तथा गेंद-क्रीड़ा से अपने को हटाकर कुशाङ्कुरों को उखाड़ने और जपमाला धारण करने में लगा दिया ॥११॥

महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः स्वकेशपुष्पैरपि या स्म दूयते ।
अशेत सा बाहुलतोपधायिनी निषेदुषी स्थण्डिल एव केवले ॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्वयः—महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः स्वकेशपुष्पैः अपि या दूयते स्म, सा बाहुलतोपधायिनी सती केवले स्थण्डिले एव निषेदुषी सती अशेत ।

व्याख्या—महार्हेति । महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः—महार्हा चासौ शय्या महार्हशय्या, तस्यां परिवर्तनं, तेन च्युतानि, तैः महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः = बहुमूल्यतल्पलुण्ठनपतितैः । स्वकेशपुष्पैः-स्वकेशानां पुष्पाणि, तैः = आत्मकच-कुसुमैः ('चिकुरः कुन्तलो वालः कचः केशः शिरोरुहः' इत्यमरः)। अपि या= पार्वती । दूयते स्म =दुःखिता भवति स्म । सा । बाहुलतोपधायिनी बाहुरेव लता बाहुलता, तामुपधत्ते तच्छीला सा = भुजलतोपबर्हधारिणी सती, केवले= मात्रम् स्थण्डिले एव=भूमावेव । निषेदुषी=निषण्णा सती । अशेत=शेते स्म ।

सरलार्थः—या पार्वती पुरा बहुमूल्यतल्पपरिवर्तनपतितैः स्वकुन्तलकुसुमैः दुःखिता भवति स्म सैव सम्प्रति (तपश्चरणे) भुजलतोपबर्हधारिणी केवलं भूमौ एवोपविष्टा शयितवती ।

हिन्दी—जो पार्वती पहले बहुमूल्य शय्या पर करवटे लेने से गिरे हुए केश-कुसुमों से दुःखी हो जाती थी वह ही अब बाहुलता को तकिया (शिर रखने का साधन) बनाकर केवल भूमि पर ही बैठी बैठी सो जाने लगी ।१२।

अथ पार्वत्याः स्वाभाविक-विलासानां परित्यागमाह—

पुनर्ग्रहीतुं नियमस्थया तया द्वयेऽपि निक्षेप इवार्पितं द्वयम् ।
लतासु तन्वीषु विलासचेष्टितं विलोलदृष्टं हरिणाङ्गनासु च ॥१३॥

अन्वयः—नियमस्थया तया तन्वीषु लतासु विलासचेष्टितं हरिणाङ्गनासु विलोलदृष्टं च द्वये अपि द्वयं पुनः ग्रहीतुं निक्षेपः अर्पितम् इव ।

व्याख्या—अथेति । नियमस्थया-नियमे तिष्ठतीति, तया = गृहीतव्रतया । तया = पार्वत्या । तन्वीषु = क्षीणासु । लतासु=वल्लीषु ('वल्ली तु व्रततिर्लता' इत्यमरः) । विलासचेष्टितम्-विलास इव चेष्टितमिति विलासचेष्टितम् = विभ्रमचेष्टितम् । हरिणाङ्गनासु=हरिणानामङ्गना हरिणाङ्गनास्तासु मृगेषु । विलोलदृष्टम्-विलोलं=चञ्चलं च तद् दृष्टम्=अवलोकनम्, तत् । च द्वये=उभये अपि । द्वयम् = उभयम् । पुनः = भूयः । ग्रहीतुम्=आदातुम् । निक्षेपः=न्यासः; अर्पितम् = दत्तम् । इव = यथा । अत्रोत्प्रेक्षालंकारः ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सरलार्थः-नियमस्था पार्वती स्वविलासचेष्टितं कुशलतासु, चञ्चलावलोकनञ्च मृगीषु तत्याज यथा सा ते द्वयेऽपि भूयः उभयमादातुं निक्षेपः कृतः स्यात्।

हिन्दी—तपस्या में संलग्न पार्वती ने कुश-लताओं में अपनी विलास-चेष्टाओं को तथा हरिणियों में चञ्चल दृष्टि को मानो पुनः वापस लेने के लिए धरोहर के रूप में रख दिया। (परित्याग कर दिया) ॥१३॥

अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान्घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्धयत्।
गुहोऽपि येषां प्रथमाऽऽप्तजन्मनां न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यति ॥१४॥

अन्वयः—सा स्वयम् एव अतन्द्रिता सती वृक्षकान् घटस्तनप्रस्रवणैः व्यवर्धयत्। गुहः अपि प्रथमाप्तजन्मनां येषां पुत्रवात्सल्यं न अपाकरिष्यति।

व्याख्या—अतन्द्रितेति। सा = पार्वती। स्वयमेव = आत्मनैव। अतन्द्रिता-नास्ति तन्द्रा यस्यां सा = आलस्यरहिता सती। वृक्षकान् = पादपान्। घटस्तनप्रस्रवणैः-घटौ एव स्तनौ, तयोः प्रस्रवणानि, तैः = कलशकुचप्रसृतजलैः। व्यवर्धयत् = वर्धितवती। गुहः अपि = कार्तिकेयः अपि। प्रथमाप्तजन्मनां—प्रथमे आप्तं प्रथमाप्तं, तत् जन्म येषां ते = प्रथमजातानाम्। येषां = वृक्षाणाम्। पुत्रवात्सल्यम्-वत्सलस्य भावो वात्सल्यम्, पुत्रस्य वात्सल्यं तत् = सुतस्नेहम्। न अपाकरिष्यति = नैव दूरीकरिष्यति। विरोधो नामालङ्कारः।

सरलार्थः—आलस्यरहिता पार्वती स्वहस्ताभ्यां पादपान् कुचकलशजलैरवर्धयत्। येषु वृक्षेषु सञ्जाते सुतस्नेहे पश्चादुत्पन्नः स्कन्दानुरागो न दूरीकरिष्यति।

हिन्दी—आलस्यरहित पार्वती ने अपने हाथों से वृक्षों को कलशकुच के फैले जल से सींचकर बड़ा किया, जिन वृक्षों पर पुत्र-प्रेम उत्पन्न होने पर बाद में उत्पन्न कार्तिकेय का स्नेह भी दूर नहीं कर सकेगा ॥१४॥

अरण्यबीजाञ्जलिदानलालितास्तथा च तस्यां हरिणा विशश्वसुः।
यथा तदीयैर्नयनैः कुतूहलात् पुरः सखीनाममिमीत लोचने ॥१५॥

अन्वयः—अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिताः हरिणाः च तस्यां तथा विशश्वसुः यथा कुतूहलात् तदीयैः नयनैः लोचने सखीनां पुरः अमिमीत।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याख्या—अरण्येति । अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिताः-अरण्यस्य बीजानि अरण्यबीजानि तेषामञ्जलयः, तेषां दानमरण्यबीजाञ्जलिदानं, तेन लालिताः= नीवाराञ्जलिदानपालिताः ('अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्' इत्यमरः)। हरिणाः=मृगाः च । तस्यां=पार्वत्याम् । तथा=तेन प्रकारेण । विशश्वसुः= विश्वासमापुः । यथा=येन प्रकारेण, कुतूहलात्=औत्सुक्यात् । तदीयैः नयनैः =हरिणाक्षिभिः । लोचने=नेत्रे । सखीनाम्=आलिनाम् ('आलिः सखी वयस्या च ।' इत्यमरः) । पुरः=समक्षम् । अमिमीत=मानं चकार ।

सरलार्थः-नीवारकणप्रदानपालिताः मृगाश्च पार्वत्यां तथाविधाः विश्वासं प्राप्तवन्तः यथा औत्सुक्यात् हरिणनेत्रैः नयने आलीनां समक्षं मानं चकार।

हिन्दी—अरण्यबीजों (नीवार) की अंजलियाँ भर-भरकर खिलाने से पालने से हिरण पार्वती पर वैसा विश्वास करने लगे जैसे उत्सुकता से हिरणों के नेत्रों से दोनों नयन सखियों के सामने मान करने लगे ।।१५।।

कृताभिषेकां हुतजातवेदसं त्वगुत्तरासङ्गवतीमधीतिनीम् ।
दिदृक्षवस्तामृषयोऽभ्युपागमन्न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते ।।१६।।

अन्वयः—कृताभिषेकां हुतजातवेदसं त्वगुत्तरासङ्गवतीं अधीतिनीं तां दिदृक्षवः ऋषयः अभ्युपागमत् । धर्मवृद्धेषु वयः न समीक्ष्यते ।

व्याख्या—कृताभिषेकामिति । कृताभिषेकाम्-कृतः अभिषेकः यया सा, ताम्=विहितस्नानाम्, हुतजातवेदसम्-हुतः जातवेदाः यया सा, ताम्= हुताग्निकाम् । त्वगुत्तरासङ्गवतीं-उत्तरे=ऊर्ध्वभागे आसज्यते इति उत्तरासङ्गः, उत्तरासङ्गः अस्याः अस्तीति, त्वचा उत्तरासङ्गवती त्वगुत्तरासङ्गवती, ताम्= वल्कलोत्तरीयवतीं ('द्वौ प्रावारोत्तरासङ्गौ समौ बृहतिका तथा संव्यानमुत्तरीयं च' इत्यमरः) । अधीतिनीं=स्तुतिपाठादि-कुर्वाणाम् । ताम्=पार्वतीम् । दिदृक्षवः-द्रष्टुमिच्छवः । ऋषयः=मुनयः । अभ्युपागमत्=समागताः । धर्मवृद्धेषु=तपश्चर्येण श्रेष्ठेषु । वयः=अवस्था ('स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृतं वयः' इत्यमरः) न समीक्ष्यते=न प्रमाणीक्रियते । अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः ।

सरलार्थः-तपःपूताः महर्षयः अघमर्षणादिस्नानशुद्धशरीराम् अग्निहोत्रेण पवित्रान्तःकरणां वल्कलोत्तरीयवतीं कृतस्तुतिपाठादिवतीं पार्वतीं द्रष्टुमिच्छवः

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तस्या पार्श्वं समुपागताः । यतः धर्मवृद्धत्वं ज्ञानवृद्धत्वं वैराग्यवृद्धत्वं वयोवृद्धत्वं च तेषु ज्ञानवृद्धत्वं प्रधानं भवति ।

हिन्दी—तप द्वारा पवित्र अन्तःकरण वाले मुनि अघमर्षण स्नान से शुद्ध शरीर और अग्निहोम से पवित्र मन तथा वाणी पार्वती के दर्शन करने के इच्छुक बनकर उसके पास आते थे, क्योंकि ज्ञानवृद्ध होने के लिए आयु बड़प्पन की परिचायक नहीं होती है ।

टिप्पणी—ज्ञानी पुरुष का वृद्ध होना अनिवार्य नहीं होता; जैसा कि मनुजी ने भी अपनी मनुस्मृति में कहा है–'न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः । यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः' ।।१६।।

विरोधिसत्त्वोज्झितपूर्वमत्सरं द्रुमैरभीष्टप्रसवार्चितातिथि ।
नवोटजाभ्यन्तरसंभृतानलं तपोवनं तच्च बभूव पावनम् ।।१७।।

अन्वयः—विरोधिसत्त्वोज्झितपूर्वमत्सरं द्रुमैः अभीष्टप्रसवार्चितातिथि नवोटजाऽभ्यन्तरसम्भृतानलं तत् च तपोवनं पावनं बभूव ।

व्याख्या—विरोधीति । विरोधिसत्त्वोज्झितपूर्वमत्सरं–विरोधः अस्ति येषां ते विरोधिनः, विरोधिनश्च ते सत्त्वाः विरोधिसत्त्वाः, उज्झितः पूर्वं मत्सरः यस्मिस्तत् विरोधिसत्त्वोज्झितपूर्वमत्सरम्=सिंहव्याघ्रादिवैरिजन्तुत्यक्तपूर्ववैरम् ('वैरं विरोधो विद्वेषः' इत्यमरः) । ('द्रव्यासु व्यवसायेषु सत्त्वमस्त्रीषु जन्तुषु' इत्यमरः) ('मत्सरोऽन्यशुभद्वेषस्तद्वत्कृपणयोस्त्रिषु' इत्यमरः) । द्रुमैः= पादपैः । अभीष्टप्रसवार्चितातिथि–अभीष्टैः प्रसवैः अर्चिता अतिथयः यस्मिन्; तत्=इष्टफलपूजिताभ्यागतम् । ('स्यादुत्पादे फले पुष्पे प्रसवो गर्भमोचने' इत्यमरः) । नवोटजाभ्यन्तरसम्भृतानलम्–नवाश्च ते उटजाः नवोटजाः तेषामभ्यन्तराणि, तेषु सम्भृताः अनलाः यस्मिन्, तत्=नूतनपर्णशालान्तरप्रज्वलितवह्नि । ('आश्रयाशो बृहद्भानुः कृशानुः पावकोऽनलः' इत्यमरः) । तत्= उक्तम् । च तपोवनम्=तपःकाननम् (पार्वत्याः) पावनम्=पूतम् । बभूव= अभूत् ।

सरलार्थः—पार्वत्याः तस्मिन् तपोवने क्रूर-हिंसकपशुभिः स्वाभाविकं वैरमत्याजि । वृक्षाः मधुरफलैरातिथ्यमकुर्वन् । नूतनासु पर्णशालासु सदा होमाग्निः ज्वलितो बभूव । एवं तत्र दर्शनमात्रेणैवातिथयः पवित्राः जाताः ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिन्दी—पार्वती के उस तपोवन में हिंसक पशुओं ने स्वाभाविक शत्रुता छोड़ दी, वृक्ष अभीष्ट पुष्प-फल आदि से अतिथिसत्कार करने लगे। नूतन पर्णशालाओं में होम की अग्नि जलती रहती थी तथा पार्वती का वह तपोवन दर्शनमात्र से ही पावन बन गया ॥१७॥

यदा फलं पूर्वतप:समाधिना न तावता लभ्यममंस्त काङ्क्षितम् ।
तदाऽनपेक्ष्य स्वशरीरमार्दवं तपो महत्सा चरितुं प्रचक्रमे ॥१८॥

अन्वय:—सा यदा तावता पूर्वतप:समाधिना कांक्षितं फलं लभ्यं न अमंस्त, तदा स्वशरीरमार्दवम् अनपेक्ष्य महत् तप: चरितुं प्रचक्रमे ।

व्याख्या—यदेति । सा=पार्वती । यदा=यस्मिन् काले । तावता=तावत्प्रमाणेन । पूर्वतप:समाधिना-तपस: समाधि: तप:समाधि-पूर्वश्चासौ तप: समाधिस्तेन=प्राक्तपस्यानियमेन । कांक्षितं=इच्छितम् । फलं=शिववशीकरणरूपप्रयोजनम् । लभ्यं=प्राप्यम् । न अमंस्त=नामन्यत । तदा=तावत् । स्वशरीरमार्दवम्-स्वस्य शरीरं स्वशरीरं, तस्य मार्दवम्, तत्=निजदेहसौकुमार्यम् । अनपेक्ष्य=अपेक्षां न कृत्वा । महत्=दुष्करम् । तप:=तपस्या । चरितुम्=कर्तुम् प्रचक्रमे=आरेभे ।

सरलार्थ:—यदा पार्वती प्राक्तपोनियमेनाभीष्टं शिववशीकरणरूपं प्रयोजनमलभ्यममन्यत, तदाऽऽत्मशरीरसौकुमार्यमविगणय्यातिदुष्करं तप: कर्तुमारभत् ।

हिन्दी—जब पार्वती जी ने पूर्व तपस्या के द्वारा अपना अभीष्ट (शिव को वश में करने का प्रयोजन) सफल होते नहीं देखा तब अपने शरीर-सौष्ठव की गणना न कर अतिकठोर तप करना आरम्भ किया ॥१८॥

क्लमं ययौ कन्दुकलीलयाऽपि या तया मुनीनां चरितं व्यगाह्यत ।
ध्रुवं वपु: काञ्चनपद्मनिर्मितं मृदु: प्रकृत्या च ससारमेव च ॥१९॥

अन्वय:—या कन्दुकलीलया अपि क्लमं ययौ, तया मुनीनां चरितं व्यगाह्यत । ध्रुवम् अस्या: वपु: काञ्चनपद्मनिर्मितम्, अत एव प्रकृत्या मृदु: च ससारम् एव च ।

व्याख्या—क्लममिति । या=पार्वती । कन्दुकलीलया—कन्दुकस्य लीला

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कन्दुकलीला, तया=कन्दुकक्रीडया। अपि। क्लमम्=ग्लानिं। ययौ=प्राप। तया=पार्वतीदेव्या। मुनीनां=ऋषीणाम्। चरितं=आचरणम्, तपोवृत्तम्। व्यगाह्यत=प्रविष्टम्। ध्रुवम्=किल। अस्याः=एतस्याः पार्वत्याः। वपुः=शरीरम्। काञ्चनपद्मनिर्मितम्–काञ्चनं तत् पद्मं काञ्चनपद्मं, तेन निर्मितं=स्वर्णकमलरचितम् ('चामीकरं जातरूपं महारजतकाञ्चने' इत्यमरः)। अत एव प्रकृत्या=स्वभावेन। मृदु=सुकुमारं च। ससारं–सारेण सहितं ससारं=सारयुक्तमेव च, कठिनमेवेत्यर्थः। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः।

सरलार्थः—या पार्वती सुकुमारतया कन्दुकक्रीड़नेनापि ग्लानिं प्राप, सा मुनीनां चरितं कठिनं तपश्चरणं चकार। नूनमेवास्याः शरीरं स्वर्णकमलरचितम्, अतएव प्रकृत्या सुकुमारं सारयुक्तं कठिनं चापि अस्तीति।

हिन्दी—जो पार्वती सुकुमारता के कारण गेंद खेलने में भी थकावट अनुभव करती थी वही (अब) ऋषियों के कठिन आचरण (तपस्या) करने में लग गई। निश्चय ही इनका शरीर स्वर्ण-कमल का बना हुआ है अतएव स्वभावतः सुकुमार तथा (सोने की भाँति) कठोर है ॥१९॥

शुचौ चतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजां शुचिस्मिता मध्यगता सुमध्यमा।
विजित्य नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभामनन्यदृष्टिः सवितारमैक्षत ॥२०॥

अन्वयः—शुचौ शुचिस्मिता सुमध्यमा ज्वलतां चतुर्णां हविर्भुजां मध्यगता सती नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभां विजित्य अनन्यदृष्टिः सती सवितारम् ऐक्षत।

व्याख्या—शुचाविति। शुचौ=ग्रीष्मे ('शुचिर्ग्रीष्माग्निशृङ्गारेष्वाषाढ़े शुद्धमन्त्रिणि। ज्येष्ठे च पुंसि धवले शुद्धेऽनुपहते त्रिषु॥' इति मेदिनी)। शुचिस्मिता=विशदमन्दहासा। सुमध्यमा–शोभनं मध्यमं यस्याः सा सुमध्यमा=शुभध्यमा ('इषद्विकासिनयनं स्मितं स्यात् स्यन्दिताधरम्' इति सा० दर्पणम्)। ज्वलतां=दीप्तिमताम्। चतुर्णां=चतुःसंख्यकानाम्। हविर्भुजां—हवींषि भुञ्जन्तीति हविर्भुजस्तेषाम्=अग्नीनाम्। मध्यगता=अन्तर्गता सती। नेत्रप्रतिघातिनीं-नेत्रे प्रतिहन्ति तच्छीला नेत्रप्रतिघातिनी, ताम्=नयनचाकचक्यकारिणीम्। प्रभां=कान्तिम्। विजित्य=जित्वा। अनन्यदृष्टिः–न विद्यते अन्यत्र दृष्टिर्यस्या सा=अन्यत्रास्थिरदृष्टिः सती। सवितारम्=भास्करम् ('भानुर्हंसः सहस्रांशुस्तपनः सविता रविः' इत्यमरः)। ऐक्षत=ददर्श।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सरलार्थः—ग्रीष्मर्तौ विशदमन्दहासा सा पार्वती पुरतः पृष्ठतः पार्श्वयो-रुभयोश्चाग्नि ज्वलन्तीं स्थापयित्वा तन्मध्ये स्थिता सती केवलं रविमवलोक-यन्ती तपश्चकार।

हिन्दी—गर्मी में विशदमन्दहास वाली क्षीणावलग्ना पार्वती सामने, पीछे तथा दायें-बायें चारों ओर जलती हुई अग्नि के मध्य बैठकर आखों को चकाचौंध करने वाले सूर्य की ओर टकटकी बाँधकर पञ्चाग्निसाधनरूपी तपस्या करने लगी ॥२०॥

तथाऽतितप्तं सवितुर्गभस्तिभिर्मुखं तदीयं कमलश्रियं दधौ।
अपाङ्गयोः केवलमस्य दीर्घयोः शनैःशनैः श्यामिकया कृतं पदम् ॥२१॥

अन्वयः—सवितुः गभस्तिभिः तथा अतितप्तं तदीयं मुखं कमलश्रियं दधौ। अस्य दीर्घयोः अपाङ्गयोः केवलं शनैः शनैः श्यामिकया पदं कृतम्।

व्याख्या—तथेति। सवितुः=सूर्यस्य ('भानुर्हंसः सहस्रांशुः तपनः सविता रविः' इत्यमरः)। गभस्तिभिः=किरणैः ('किरणोस्रमयूखांशुगभस्तिघृणिरश्मयः' इत्यमरः)। तथा=तद्विधम्। अतितप्तम्=सन्तप्तम्। तदीयं=तस्याः पार्वत्याः। मुखम्=आननम्। कमलश्रियम्=कमलस्य श्रीः कमलश्रीः, ताम्=पद्मशोभाम्। दधौ=बभार। अस्य=मुखस्य। दीर्घयोः=महतोः। अपाङ्गयोः=नेत्रप्रान्तयोः। ('अपाङ्गौ नेत्रयोः प्रान्तौ' इत्यमरः)। केवलं=मात्रम्। शनैः-शनैः=मन्दं-मन्दम्। श्यामिकया=कालिम्ना। पदम्=स्थानम्। कृतम्=विहितम्। अत्रोपमालङ्कारः।

सरलार्थः—सूर्यकिरणैः तथाविधं तप्तं तस्याः पार्वत्याः मुखं कमलशोभां दधार। मुखस्यायतनेत्रप्रान्तयोः केवलं मन्दं मन्दं कालिम्नास्थानं कृतम्।

हिन्दी—सूर्य की किरणों से जिस प्रकार कमल प्रकाशित होता है वैसे ही अति तप्त पार्वती का मुख चमक उठा। मुख के दोनों आयत नेत्र-प्रान्तों (आँखों के छोर) में केवल धीरे-धीरे कालिमा ने स्थान बनाया। (काला दाग-सा पड़ गया) ॥ २१ ॥

अथ पार्वत्याः शरीरयात्रा वर्ण्यते—

अयाचितोपस्थितमम्बु केवलं रसात्मकस्योडुपतेश्च रश्मयः।
बभूव तस्याः किल पारणाविधिर्न वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्वयः—अयाचितोपस्थितं केवलम् अम्बु रसात्मकस्य उडुपतेः रश्मयः च तस्याः पारणाविधिः बभूव किल । वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः पारणाविधि न बभूव ।

व्याख्या—अयाचितेति । अयाचितोपस्थितम्-न याचितमयाचितम्, तच्च तदुपस्थितं, तत्=अप्रार्थितोपनतम् । केवलम्=मात्रम् । अम्बु=जलम् ('अम्भोर्णस्तोयपानीयनीरक्षीराम्बुशम्बरम्' इत्यमरः) । रसात्मकस्य-रसः आत्मा यस्य सः, तस्य=अमृतमयस्य । उडुपतेः—उडूनां पतिः उडुपतिस्तस्य=चन्द्रस्य ('नक्षत्रममृतं भं तारा तारकाप्युडुवा स्त्रियाम्' इत्यमरः)। रश्मयः=मयूखाः च । तस्याः=पार्वत्याः । पारणाविधिः-पारणायाः विधिः=भक्षणकर्म । बभूव=अभूत् किल । वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः-वृक्षाणां वृत्तिः वृक्षवृत्तिः, विशेषेणातिरिक्त व्यतिरिक्तम्, वृक्षवृत्तेः व्यतिरिक्तं तत् साधनं यस्य सः=तरुजीवनाधिकोपायः ('आजीवो जीविका वार्ता वृत्तिर्वर्त्तनजीवने' इत्यमरः) । पारणाविधिः । न बभूव=नाभवत् ।

सरलार्थः—अप्रार्थितोपस्थितं केवलं मेवाम्बु, अमृतमयस्य सोमस्य मयूखाश्च पार्वत्याः भोजनमभवत् । वृक्षजीवनोपायातिरिक्तं कन्दमूलफलादिकं तस्याः भोजनं नाभवत् ।

हिन्दी—विना माँगे उपस्थित केवल वर्षा के जल और अमृतमय चन्द्रमा की किरणें ही पार्वती का भोजन बन गयीं। वृक्षों के जीवन के समान ही वह केवल जल और चन्द्र-किरणों पर अपना जीवनयापन करने लगीं, कन्दमूल-फलादि खाकर नहीं ॥ २२॥

निकामप्तता विविधेन वह्निना नभश्चरेणेन्धनसम्भृतेन सा ।
तपात्यये वारिभिरुक्षिता नवैर्भुवा सहोष्माणममुञ्चदूर्ध्वगम् ॥२३॥

अन्वयः—विविधेन नभश्चरेण इन्धनसम्भृतेन वह्निना निकामतप्ता सा तपात्यये नवैः वारिभिः उक्षिता सती भुवा सह ऊर्ध्वगम् ऊष्माणम् अमुञ्चत ।

व्याख्या—निकामेति । विविधेन=विभिन्नेन । नभश्चरेण-नभसि चरतीति नभश्चरस्तेन=खेचरेण इन्धनसम्भृतेन-इन्धनैः=काष्ठैः सम्भृतः=समिद्धस्तेन । ('काष्ठं दार्विन्धनं त्वेध इध्ममेधः समित्स्त्रियाम्' इत्यमरः) । वह्निना-अनलेन । निकामतप्ता—निकामं तप्ता निकामतप्ता=अतिसन्तप्ता । सा=

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पार्वती । तपत्यये-तपस्य अत्यय:, तस्मिन्=ग्रीष्मसमाप्तौ । नवै:=नूतनै: वारिभि: =अम्बुभि: । उक्षिता सती = सिक्ता सती । भुवा सह=धरण्या सह । ऊर्ध्वगम् =ऊर्ध्वगामि । ऊष्माणम्=वाष्पम् । अमुञ्चत=अत्यजत् ('ग्रीष्मोष्मवाष्पमूष्माणम्' इति यादव:) । अत्र सहोक्तिरलङ्कार: ॥२३॥

अथ पार्वत्या: वार्षिकं तप:प्रकारं वर्ण्यते —

स्थिता: क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधरा: पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिता: ।
वलीषु तस्या: स्खलिता: प्रपेदिरे चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दव: ॥२४॥

अन्वय--प्रथमोदबिन्दव: तस्या: पक्ष्मसु क्षणं स्थिता: ताडिताधरा: पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिता: वलीषु स्खलिता: चिरेण नाभिं प्रपेदिरे ।

व्याख्या—स्थिता इति । प्रथमोदबिन्दव:-उदस्य बिन्दव: उदबिन्दव:, प्रथमे च ते उदबिन्दव: प्रथमोदबिन्दव:=प्रथमजलपृषता:, ('कबन्धमुदकं पाथ: पुष्करं सर्वतोमुखम्' इत्यमर:), ('पृषन्ति बिन्दुपृषता: पुमांसो विप्रुष: स्त्रियाम्' इत्यमर:) । तस्या:-पार्वत्या: । पक्ष्मसु=नयनरोमसु । क्षणं=निमिषम् । स्थिता:=अवस्थिता: । ताडिताधरा:=ताडित: अधर: यैस्ते=व्यथितोष्ठा: । पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिता:-पयसां धरौ पयोधरौ, तयोरुत्सेध: पयोधरोत्सेध: तस्मिन् निपातस्तेन चूर्णिता: = कुचाग्रपतनजर्जरिता: । ('स्त्रीस्तनाब्दौ पयोधरौ' इत्यमर:) । वलीषु = उदररेखासु । स्खलिता: = पतिता: (इत्थम्) चिरेण=बहुकालेन । नाभिं =तुन्दिम् ('नाभिर्द्वयोस्तुन्दकूपी तुन्दिस्तुन्दीकर: पुमान्' इति त्रिकाण्डकोश:) । प्रपेदिरे = प्रविष्टा: । अत्र परिकरालङ्कार: ।

सरलार्थ:--वर्षारम्भे भाविप्रथमजलबिन्दव: पार्वत्या: नयनरोमराजिषु क्षणमवस्थिता:, तदनन्तरं व्यथितोष्ठा: स्तनयोरुपरिपतिता: खण्डश: जाताश्च ते उदररेखासु प्रपतिता: बहुकालं नाभिस्थलं प्रविविशु: ।

हिन्दी--वर्षाकाल के आरम्भ में प्रथम जल की बूंदे पार्वती के नेत्ररोमराजि पर रुककर, मृदुल ओठों को ताड़ितकर स्तनों के ऊपरी भाग पर गिरने से इधर-उधर बिखरकर त्रिवली पर ठहरती हुई नाभि में प्रविष्ट होती थीं ।२४।

शिलाशयां तामनिकेतवासिनीं निरन्तरास्वन्तरवातवृष्टिषु ।
व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तडिन्मयैर्महातप:साक्ष्य इव स्थिता: क्षपा: ॥२५॥

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्वयः— निरन्तरासु अन्तरवातवृष्टिषु अनिकेतवासिनीं शिलाशयां ताम् महातपःसाक्ष्ये स्थिताः क्षपाः तडिन्मयैः उन्मिषितैः व्यलोकयन् इव ।

व्याख्या–शिलेति । निरन्तरासु=निर्गतमन्तरं याभ्यस्ताः=अविच्छिन्नासु । अन्तरवातवृष्टिषु–अन्तरे=मध्ये वाताः=वायवः यासां ताः अन्तरवाताः, ताश्च ताः वृष्टयस्तासु अन्तरवातवृष्टिषु=मध्यवायुवर्षासु । अनिकेतवासिनीं-निकेते वसतीति निकेतवासिनी, न निकेतवासिनी इति ताम्=अगृहवासिनीम् । शिलाशयां–शिलायां शेते शिलाशया, ताम्=प्रस्तरतलशायिनीम् । ताम्= पार्वतीम् । महातपःसाक्ष्ये=घोरतपस्यासाक्षित्वे । स्थिताः-विद्यमानाः क्षपाः= निशाः । तडिन्मयैः–विद्युद्रूपैः ('निशानिशीथिनी रात्री त्रियामा क्षणदा क्षपा' इत्यमरः) ('तडित्सौदामिनी विद्युच्चञ्चलाचपला तथा' इत्यमरः) । उन्मिषितैः=अवलोकनैः । व्यलोकयन् इव=अपश्यन्निव । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

सरलार्थः–अविच्छिन्नासु मध्यवायुवर्षासु अनावृतस्थलवासिनीं, प्रस्तर-तलशायिनीं पार्वतीं कठिनतपःसाक्षित्वे वर्तमानाः निशाः विद्युद्रूपैरवलोकनैः ददृशुरिव ।

हिन्दी—निरन्तर वायु तथा वर्षा के बीच खुले मैदान में रहने वाली, शिलातल पर लेटने वाली उन पार्वती को कठोर तपस्या के साक्ष्य में स्थित निशायें बिजली के रूप वाली दृष्टियों से मानों देखतीं थीं ।। २५ ।।

निनाय सात्यन्तहिमोत्किरानिलाः सहस्यरात्रीरुदवासतत्परा ।
परस्पराक्रन्दिनी चक्रवाकयोः पुरो वियुक्ते मिथुने कृपावती ।। २६ ।।

अन्वयः—सा अत्यन्तहिमोत्किरानिलाः सहस्यरात्रीः उदवासतत्परा परस्पराक्रन्दिनि पुरः वियुक्ते चक्रवाकयोः मिथुने कृपावती सती निनाय ।

व्याख्या—निनायेति । सा=पार्वती । अत्यन्तहिमोत्किरानिलाः–उत्किर-न्तीत्युत्किराः, हिमानामुत्किराः हिमोत्किराः, अत्यन्तं हिमोत्किरा इति ते अनिलाः यासु ताः=अतीवतुहिनक्षेपिपवनाः । सहस्यरात्रीः–सहसि=बले साधुः सहस्यः, तस्य रात्रयः सहस्यरात्रयस्ताः=पौषनिशाः ('पौषे तैषसहस्यौ द्वौ' इत्यमरः) । उदवासतत्परा:–उदे=उदके वासः=निवासः उदवासः, तस्मिन् तत्पराः=संलग्नाः=जलनिवाससक्ताः । परस्पराक्रन्दिनि=परस्परं यथा स्यात्तथा

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आक्रन्दि, तस्मिन्=अन्योन्याक्रोशिनि। पुरः=सम्मुखम्। वियुक्ते=वियोगयुक्ते। चक्रवाकयोः=चक्रवाकपक्षिणोः। मिथुने=युग्मे ('स्त्रीपुंसौ मिथुनं द्वन्द्वम्' इत्यमरः)। कृपावती=सती। निनाय=यापयामास।

सरलार्थः—पार्वती हिमालयस्य शैत्यपूर्णाः पौषनिशाः जलाधिवासनियता सती पुरः वियुक्ते चक्रवाकयुगले दयां कुर्वती अयापयत्।

हिन्दी—वह (पार्वती) हिमालय की वर्फीली वायु वाली पूष की ठण्डी रातें जल में रहकर बिताती हुई सामने बिछुड़े हुए चकवा के जोड़े पर सहानुभूति रखती हुई यापन करती थीं॥ २६॥

मुखेन सा पद्मसुगन्धिना निशि प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना।
तुषारवृष्टिक्षतपद्मसम्पदां सरोजसन्धानमिवाकरोदपाम्॥ २७॥

अन्वयः—सा निशि पद्मसुगन्धिना प्रवेपमानाऽधरपत्रशोभिना मुखेन तुषारवृष्टिक्षतपद्मसम्पदाम् अपाम् सरोजसन्धानम् अकरोत् इव।

व्याख्या—मुखेनेति। सा=पार्वती। निशि=रात्रौ। पद्मसुगन्धिना-शोभनः गन्धः यस्य सः सुगन्धिः, पद्म इव सुगन्धिः पद्मसुगन्धिस्तेन=कमलसुरभिणा। प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना-प्रवेपमानश्चासौ अधरः प्रवेपमानाधरः, स एव पत्रं, तेन शोभते तच्छीलं तेन=कम्पमानोष्ठदलशोभिना। मुखेन=वदनेन। तुषारवृष्टिक्षतपद्मसम्पदां=तुषारस्य वृष्टिः तुषारवृष्टिस्तया क्षताः, पद्मानां सम्पदः, तासाम्=तुहिनवर्षाध्वस्तसम्पत्तीनाम्। अपाम्=वारिणाम्। सरोजसन्धानं-सरसि जातानि सरोजानि तेषां सन्धानम् तत्=पद्मसंघटनम्। अकरोत् इव=चकार यथा। अत्रोत्प्रेक्षारूपकव्यतिरेकालङ्कारेषु सङ्करः।

सरलार्थः-उदकवासतत्परत्वात् जले मुखमात्रदृष्ट्या पार्वती शैत्यनिशायां सरोजगन्धिना कम्पमानाधरसुन्दरेण मुखेन तुहिनक्षतकमलसम्पत्तीनां वारिणां सततं सरोजसम्बन्धमिव चकार।

हिन्दी—पार्वती रात्रि में पद्मसुगन्धयुक्त कांपते हुए होठों वाले मुख से हिमवर्षण से ध्वस्त हुई कमल सुषमावाले जल में मानो कमलों का अनुसन्धान करती थी॥ २७॥

स्वयंविशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः।
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः॥ २८॥

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्वयः—स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता तपसः पराकाष्ठा हि। तया पुनः तत् अपि अपाकीर्णम् अतः प्रियंवदां तां पुराविदः अपर्णा इति च वदन्ति।

व्याख्या—स्वयमिति। स्वयम्=आत्मनैव। विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता–विशीर्णानि द्रुमस्य पर्णानीति विशीर्णद्रुमपर्णानि, तदेव वृत्तिस्तस्य भावः सा=च्युतवृक्षपत्रवर्तनत्वम् ('आजीवो जीविका वार्ता वृत्तिर्वर्तनजीवने' इत्यमरः)। तपसः=तपस्यायाः। पराकाष्ठा=सीमा। हि। तया=पार्वत्या। पुनः=भूयः। तत्=पत्रवर्तनम् अपि। अपाकीर्णम्=अपाकृतम्। अतः=अस्मात् कारणात्। प्रियंवदा–प्रियं=मृदु वदति=भणतीति प्रियंवदा, ताम्=मृदुभाषिणीम्। ताम्=पार्वतीम्। पुराविदः–पुरा विदन्तीति पुराविदः=पुराणवेत्तारः (पुरा पुराणे निकटे प्रबन्धातीतमाविषु' इति मेदिनी)। अपर्णा–अविद्यमानं भक्ष्यत्वेन पर्णम् अपि यस्याः सा अपर्णा=पर्णभक्ष्यापि रहिता ('अपर्णा पार्वती दुर्गा मृडानी चण्डिकाम्बिका' इत्यमरः)। इति च वदन्ति=कथयन्ति।

सरलार्थः—स्वतश्च्युतवृक्षपत्रवर्तनत्वं तपस्यायाश्चरमोत्कर्षः भवति। पार्वत्याः पुनः स्वतश्च्युतवृक्षदलवर्तनमपि अपाकृतम्। अतः पौराणिकास्तामपर्णा कथयन्ति स्म।

हिन्दी—अपने आप गिरे हुए वृक्षों के पत्तों पर जीवन यापन करना तपस्या की उत्कृष्ट सीमा है परन्तु पार्वती ने उनका भी परित्याग कर दिया। अत एव पुराणज्ञ लोग उन्हें 'अपर्णा' कहने लगे॥ २८॥

मृणालिकापेलवमेवमादिभिर्व्रतैः स्वमङ्गं ग्लपयन्त्यहर्निशम्।
तपः शरीरैः कठिनैरुपार्जितं तपस्विनां दूरमधश्चकार सा॥२९॥

अन्वयः—मृणालिकापेलवं स्वम् अङ्गम् एवम् आदिभिः व्रतैः अहर्निशं ग्लपयन्ती सा कठिनैः शरीरैः उपार्जितं तपस्विनां तपः दूरम् अधः चकार।

व्याख्या—मृणालिकेति। मृणालिकापेलवम्–मृणालिका इव पेलवं, तत्=कमलिनीकन्दकोमलम्। स्वम्=निजम्। अङ्गम्=शरीरम्। एवम्=इत्थम् आदिभिः=पूर्वोक्तैः। व्रतैः=यमनियमादिभिः। अहर्निशम्–अहश्च निशा च अहर्निशम् तत्=रात्रिन्दिवम्। ग्लपयन्ती=शोषयन्ती। सा=पार्वती। कठिनैः=कठोरैः। शरीरैः=देहैः। उपार्जितम्=सम्पादितम्। तपस्विनाम्=तपोव्रतानाम्

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तपः=व्रतं, तपश्चरणम् । दूरम्=अत्यन्तम् । अधः=निम्नस्थानम् । चकार=कृतवती, तिरश्चकारेत्याशयः ('कर्कशं कठिनं क्रूरं कठोरं निष्ठुरं दृढम्' इत्यमरः) ।

सरलार्थः-कमलकन्दकोमलं निजाङ्गमित्थं पूर्वोक्तैर्यमनियमादिभिः रात्रिंदिवं शोषयन्ती पार्वती कठोरैः सम्पादितं तापसानां तपस्तिरश्चकार ।

हिन्दी-मृणालिनी सदृश कोमल अपने अङ्ग को इस प्रकार यमनियमादि द्वारा सुखाती हुई पार्वती ने कठिन शरीरों द्वारा उपार्जित तपस्वियों के तप को तिरस्कृत कर दिया ।। २९ ।।

अथाजिनाषाढधरः प्रगल्भवाग्ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा ।
विवेश कश्चिज्जटिलस्तपोवनं शरीरबद्धः प्रथमाश्रमो यथा ।।३०।।

अन्वयः—अथ अजिनाषाढधरः प्रगल्भवाक् ब्रह्ममयेन तेजसा ज्वलन् इव कश्चित् जटिलः शरीरबद्धः प्रथमाश्रमः यथा तपोवनं विवेश ।

व्याख्या—अथेति । अथ=अनन्तरम् । अजिनाषाढधरः=धरतीति धरः । आषाढी पूर्णिमा प्रयोजनमस्य सः आषाढः=पलाशदण्डः, अजिनं चाषाढश्च अजिनाषाढौ, तयोः धरः=मृगचर्मपलाशदण्डधारी ('पलाशो दण्ड आषाढे व्रते' इत्यमरः) । ब्राह्मणानां पलाशदण्डधारणमिति नियमात् । प्रगल्भवाक्-प्रगल्भा वाक् यस्य सः=प्रौढवचनः ('प्रगल्भः प्रतिमाऽन्विते' इत्यमरः) । ब्रह्ममयेन=वेदाध्ययनयुक्तेन । तेजसा-ओजसा । ज्वलन् इव=देदीप्यमानः यथा । कश्चित्=कोऽपि । जटिलः-जटाः=सटाः सन्ति यस्य सः जटिलः=जटाधरः । शरीरबद्धः--शरीरं बद्धं यस्य सः शरीरबद्धः=धृतशरीरः । प्रथमाश्रमः=ब्रह्मचर्याश्रमः इव । तपोवनं=तपःस्थलम् । विवेश=प्राविशत् । अत्रोत्प्रेक्षालंकारः ।

सरलार्थः—तदनन्तरं मृगचर्मपलाशदण्डधारी, प्रौढवचनः ब्रह्मतेजसा देदीप्यमान इव कोऽपि जटाधरः ब्रह्मचर्याश्रम इव दृश्यमानः तपोवनमप्राविशत् ।

हिन्दी--तदनन्तर मृगचर्म तथा पलाशदण्ड धारण किये, गम्भीर वाणी वाले, ब्रह्मतेज से देदीप्यमान जैसे जटायें धारण किए किसी शरीरधारी ब्रह्मचर्याश्रम जैसे अपरिचित ब्रह्मचारी ने तपोवन में प्रवेश किया ।

टिप्पणी—(१) चार आश्रम—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास । (२) ब्रह्मचारी को केवल शिखाधारी (मुण्डितशिरः) अथवा जटा रखाये

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(जटाधरः) दोनों प्रकार का विधान है--'मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छिखाजटः' । (मनुस्मृति) ॥३०॥

तमातिथेयी बहुमानपूर्वया सपर्यया प्रत्युदियाय पार्वती ।
भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रियाः ॥३१॥

अन्वयः—आतिथेयी पार्वती तं बहुमानपूर्वया सपर्यया प्रत्युदियाय । साम्ये अपि अभिनिविष्टचेतसां वपुर्विशेषेषु अतिगौरवाः क्रियाः भवन्ति ।

व्याख्या--तमिति । आतिथेयी–अतिथिषु साध्वी आतिथेयी=अतिथि-सत्कारिणी । पार्वती=गौरी । तम्=जटिलं ब्रह्मचारिणम् । बहुमानपूर्वया-बहुः=अधिकं मानं=सत्कारं पूर्वं=प्राक् यस्याः सा, तया=अतिगौरवपूर्वया । सपर्यया=अर्चया (पूजा नमस्यापचितिः सपर्याऽर्चाऽर्हणासमाः' इत्यमरः) । प्रत्युदियाय=उदतिष्ठत् । साम्ये=समानत्वे अपि । अभिनिविष्टचेतसां–अभिनिविष्टं चेतः येषां ते, तेषाम्=स्थिरचेतानाम् । वपुर्विशेषेषु–वपुषां विशेषाः वपुर्विशेषास्तेषु–व्यक्तिविशिष्टेषु । अतिगौरवाः–अतिशयेन गौरवाः=अत्यधिक-गौरवयुक्ताः । भवन्ति=प्रवर्तन्ते । अत्रार्थान्तरोऽलङ्कारः ।

सरलार्थः—अतिथिसत्कारिणी पार्वती तं ब्रह्मचारिणं बहुमानसहितयाऽर्चया प्रत्युज्जगाम । समानतायामपि स्थिरचेतानां व्यक्तिविशेषेषु अतिगौरव-पूर्णाः क्रियाः भवन्ति ।

हिन्दी—अतिथि-सत्कार करने वाली पार्वती ने उस ब्रह्मचारी का बड़ी श्रद्धा के साथ उठकर सम्मान किया । (रागद्वेषरहित) समबुद्धि वाले स्थिर बुद्धि महानुभावों का व्यक्तिविशेष के प्रति अत्यन्त गौरवपूर्ण सत्कार हुआ करता है ॥ ३१ ॥

विधिप्रयुक्तां परिगृह्य सत्क्रियां परिश्रमं नाम विनीय च क्षणम् ।
उमां स पश्यन्नृजुनैव चक्षुषा प्रचक्रमे वक्तुमनुज्झितक्रमः ॥ ३२ ॥

अन्वयः– सः विधिप्रयुक्तां सत्क्रियां परिगृह्य क्षणं परिश्रमं च विनीय अथ उमाम् ऋजुना एव चक्षुषा पश्यन् अनुज्झितक्रमः सन् वक्तुं प्रचक्रमे ।

व्याख्या—विधीति । सः=असौ ब्रह्मचारी । विधिप्रयुक्तां-विधिना प्रयुक्ता, ताम्=विधिपूर्वककृताम् । सत्क्रियाम्=सत्कारम् । परिगृह्य=स्वीकृत्य । क्षणम्

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

=किञ्चित्कालम् । परिश्रमम्=मार्गजनितश्रमम् । च विनीय=दूरीकृत्य । अथ= अनन्तरम् । उमां=पार्वतीम् । ऋजुना=सरलेन । एव । चक्षुषा=नेत्रेण । पश्यन्=अवलोकयन् । अनुज्झितक्रमः-नैव उज्झितः क्रम येन सः=अभङ्गक्रमः सन् । वक्तुम्=कथयितुम् । प्रचक्रमे=प्रारभत ।

सरलार्थः—विधिवत्कृतं स्वागतसत्कारं स्वीकृत्य ब्रह्मचारी सः क्षणं विश्रम्य च पार्वतीं सरलेन नयनेन पश्यन् तारतम्येण कथयितुमारभत ।

हिन्दी—विधिवत् किये गये स्वागत-सत्कार को ग्रहण कर ब्रह्मचारी ने क्षणभर विश्राम करके क्रम को तोड़े बिना ही इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया ।। ३२ ।।

अथ त्रिभिः श्लोकैः सः तां तपःसाधनसम्पदं पृच्छति—

अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशं जलान्यपि स्नानविधिक्षमाणि ते ।
अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तसे शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ।। ३३ ।।

अन्वयः—क्रियार्थं समित्कुशं सुलभम् अपि ? जलानि ते स्नानविधिक्षमाणि अपि ? स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तसे अपि ? खलु शरीरम् आद्यं धर्मसाधनम् अस्तीति ।

व्याख्या—अपीति । क्रियार्थम्=होमाद्यनुष्ठानार्थम् । समित्कुशम्-समिधश्च कुशाश्च समित्कुशं, तत्=काष्ठदर्भादिकम् ('अस्त्री कुशं कुथो दर्भः पवित्रम्' इत्यमरः) । सुलभम्—सुखेन लब्धुं शक्यं सुलभं=सुप्राप्यम् । अपि=कच्चित् । जलानि=वारीणि । ते=तव । स्नानविधिक्षमाणि—स्नानस्य विधिः स्नानविधिः, तत्र क्षमाणि तानि=मज्जनकर्मार्हाणि । अपि=कच्चित् । स्वशक्त्या-स्वस्य शक्तिः स्वशक्तिस्तया=आत्मबलेन । तपसे=तपश्चरणाय । प्रवर्तसे अपि=प्रवृत्ता भवसि कच्चित् । खलु=किल । शरीरम्=देहः। आद्यम्-आदौ भवमाद्यम्=प्राथमिकम् । धर्मसाधनं-धर्मम् साधनम्=सुकृतोपकरणमस्तीति । अत्रार्थान्तरोऽलङ्कारः ।

सरलार्थः—(देवि !) तवाश्रमे होमाद्यनुष्ठानयोग्यानि काष्ठदर्भादिवस्तूनि सुलभानि सन्ति किमु ? अत्र स्नानयोग्यानि स्वच्छानि जलानि सन्ति किम् ? आत्मबलेनैव तपश्चरितुं प्रवृत्ता भवसि किमु ? नूनं शरीरमेव प्रारंभिकं धर्मसाधनमस्ति ।

हिन्दी—हे देवि ! तुम्हारे आश्रम पर होमादि के अनुष्ठान की काष्ठ (समिधा) कुश आदि सामग्री तो सरलता से मिल जाती है ? यहाँ स्नान

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करने योग्य स्वच्छ जल तो सुप्राप्य है ? तुम इस तपस्या को अपनी शक्ति से ही तो कर रही हो ? (अर्थात् तप के द्वारा शरीर दुर्बल कर रही हो) वास्तव में शरीर ही धर्म के अन्य साधनों की अपेक्षा प्रधान साधन है। अतः धर्म-कर्म के लिए शरीर की रक्षा करना प्रथम कर्त्तव्य है ।। ३३ ।।

अपि त्वदावर्जितवारिसम्भृतं प्रवालमासामनुबन्धि वीरुधाम् ।
चिरोज्झिताऽलक्तकपाटलेन ते तुलां यदारोहति दन्तवाससा ।। ३४ ।।

अन्वयः—त्वदावर्जितवारिसम्भृतम् आसां वीरुधां प्रवालम् अनुबन्धि अपि ? यत् चिरोज्झितालक्तकपाटलेन ते दन्तवाससा तुलाम् आरोहति ।

व्याख्या—अपीति । त्वदावर्जितवारिसम्भृतम्—त्वया आवर्जितम् त्वदावर्जितं, तच्च तद् वारि, तेन सम्भृतम्=त्वत्सिक्तसलिलोत्पन्नम् । आसाम्=एतासाम् । वीरुधाम्=लतानाम् । प्रवालं=पल्लवम् । अनुबन्धि अपि=अनुस्यूतं किमु ? यत् चिरोज्झिताऽलक्तकपाटलेन—चिरम् उज्झितः चिरोज्झितः, सः अलक्तकः येन तत् च पाटलं तेन=बहुकालत्यक्तालकरक्तेन । ते=तव । दन्तवाससा—दन्तान् वसते दन्तवाससतेन=रदनाच्छादनेन (ओष्ठाधरौ तु रदनच्छदौ दशनवाससी' इत्यमरः) । तुलाम्=तुलनाम् । आरोहति=गच्छतीति ।

सरलार्थः—एतासु आश्रम-लतासु त्वज्जलप्रदानात् नूतनपल्लवोत्पत्तिः सर्वदा जायते कच्चित् ? यन्नवपल्लवाः चिरालक्तकरसत्यागात् अपि स्वाभाविकारुणेन तवाधरोष्ठेन तुलनां गच्छति ।

हिन्दी—इन आश्रम लताओं में तुम्हारे द्वारा दिये गये जल से नवीन पल्लव तो सदैव निकलते रहते हैं ? जो कि नवीन पत्ते चिरकाल से लाक्षारस को न लगाने से भी स्वाभाविक अरुण वर्ण के तुम्हारे अधरोष्ठ को तुलना को प्राप्त करते हैं ।। ३४ ।।

अपि प्रसन्नं हरिणेषु ते मनः करस्थदर्भप्रणयापहारिषु ।
य उत्पलाक्षि ! प्रचलैर्विलोचनैस्तवाक्षिसादृश्यमिव प्रयुञ्जते ।। ३५ ।।

अन्वयः—करस्थदर्भप्रणयापहारिषु हरिणेषु ते मनः प्रसन्नम् अपि ? हे उत्पलाक्षि ! ये प्रचलैः विलोचनैः तव अक्षिसादृश्यं प्रयुञ्जते इव ।

व्याख्या—अपि प्रसन्नमिति । करस्थदर्भप्रणयापहारिषु—करे तिष्ठन्तीति करस्थाः, ते च ते दर्भाः तान् प्रणयेन अपहरन्तीति करस्थदर्भप्रणयापहारिणः,

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तेषु=हस्तस्थितकुशस्नेहग्रहीतृषु । हरिणेषु=मृगेषु । ते=तव । मनः=चित्तम् । प्रसन्नम् अपि=न क्षुभितं कच्चित् ? हे उत्पलाक्षि—उत्पलमिवाक्षिणी यस्याः सा, तत्सम्बोधने=हे कमलनेत्रे ! ये प्रचलैः=चपलैः । विलोचनैः=नयनैः । तव=त्वदीयम् । अक्षिसादृश्यम्–अक्ष्णोः सादृश्यमित्यक्षिसादृश्यम् तत्=नयनसमानताम् । प्रयुञ्जते इव=अभिनयन्ति इव । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

सरलार्थः—करस्थितकुशानुरागशालिषु मृगेषु तव चित्तं प्रसन्नं कच्चित् ? हे कमलाक्षि ! येषां मृगाणां चञ्चलदृष्टिः तव नयनसमानतां करोति ।

हिन्दी—हाथ पर रखे कुशों को छीन-छीनकर खाने वाले हिरणों पर तो तुम्हारा मन प्रसन्न रहता है ? हे कमलनयने ! जो हिरण चञ्चल-नयनों से तुम्हारी आखों का अनुकरण करते हैं ॥ ३५ ॥

यदुच्यते पार्वति ! पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः ।
तथाहि ते शीलमुदारदर्शने ! तपस्विनामप्युपदेशतां गतम् ॥३६॥

अन्वयः—हे पार्वति ? रूपं पापवृत्तये न इति यत् उच्यते तद् वचः अव्यभिचारि तथाहि हे उदारदर्शने ! ते शीलं तपस्विनाम् अपि उपदेशताम् गतम् ।

व्याख्या--यदिति । हे पार्वति=हे उमे ! रूपं=सौम्याकृतिः । पापवृत्तये-पापस्य वृत्तिस्तस्यै=पापाचरणाय । न=न भवति । इति=इत्थम् । यत् उच्यते=यत्कथ्यते । तद्वचः=तद्वचनम् अव्यभिचारि–न व्यभिचरतीति अव्यभिचारि तत्=व्यभिचाररहितं सत्यम् । तथाहि=यतोहि । हे उदारदर्शने—उदारं दर्शनं यस्याः सा, तत्सम्बुद्धौ=हे आयताक्षि ! ते=तव । शीलं=सुवृत्तम् ('शीलं स्वभावे सद्वृत्ते' इत्यमरः) । तपस्विनां=तापसानाम् अपि । उपदेशताम्–उपदेशस्य भावः उपदेशता, ताम्=शिक्षणप्रदत्ताम् । गतम्=प्राप्तम् ।

सरलार्थः—हे गौरि ! 'सौन्दर्यं पापाचाराय न भवति इति यत्सामुद्रिकशास्त्रज्ञैः कथ्यते तत्सत्यम् । तथाहि हे रूपवति ! तव सुवृत्तं तापसानामपि शिक्षाप्रदं सञ्जातम् ।

हिन्दी—हे गौरि ! 'सौन्दर्य पापाचार के लिए नहीं होता' ऐसा जो सामुद्रिकशास्त्र के ज्ञाताओं का कथन है वह सच ही है । उदारदर्शने ! तुम्हारा शील (सद्वृत्ता) तपस्वियों के लिए भी उपदेश बन गया है ॥ ३६ ॥

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासिभिस्तथा न गाङ्गैः सलिलैर्दिवश्च्युतैः।
यथा त्वदीयैश्चरितैरनाविलैर्महीधरः पावित एष सान्वयः ॥ ३७ ॥

अन्वयः--एषः महीधरः विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासिभिः दिवः च्युतैः गाङ्गैः सलिलैः तथा न पावितः अनाविलैः त्वदीयैः चरितैः यथा साऽन्वयः पावितः।

व्याख्या—विकीर्णेति। एषः=अयम्। महीधरः-धरतीति धरः, मह्यां धरः महीधरः=हिमालयपर्वतः। विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासिभिः-सप्त च ते ऋषयः सप्तर्षयः, तेषां बलयः सप्तर्षिबलयः विकीर्णाश्च ते सप्तर्षिबलयः, तैः प्रहसन्तीति, तैः=प्रक्षिप्तसप्तर्षिपुष्पोपहारसहासैः ('सप्तर्षयो मरीच्यात्रिमुखाश्चित्रशिखण्डिनः' इत्यमरः)। ('करोपहारयोः पुंसि बलिः प्राण्य- ङ्गजे स्त्रियाम्' इत्यमरः) दिवः=अन्तरिक्षात्। च्युतैः=पतितैः। गाङ्गैः-गङ्गायाः इदं तानि गाङ्गानि तैः। सलिलैः=जलैः=गङ्गाजलैः। तथा न पावितः=तद्विधः न पवित्रीकृतः। अनाविलैः-न आविलानि अनाविलानि, तैः=अकलुषैः। त्वदीयैः= त्वत्सम्बन्धिभिः। चरितैः। यथा=येन प्रकारेण। सान्वयः-अन्वयेन सहितः सान्वयः=सकुलः, पावितः।

सरलार्थः--एषः महीधरः हिमालयः प्रक्षिप्तसप्तर्षिकुसुमोपहारसहासैः स्वर्गच्युतैः गंगाजलैः तथा न पवित्रीकृतः, अकलुषैस्तव चरितैः यथा सकुलः पवित्रीकृतः।

हिन्दी—यह हिमालय पर्वत बिखरे हुये सप्तर्षियों के पूजा के फूलों से भी स्वच्छ स्वर्ग से गिरे गंगाजल से वैसा पवित्र नहीं किया गया जैसा कि कलुषहीन (निष्कलुष, निर्मल) तुम्हारे चरित्रों द्वारा कुलसहित पवित्र किया गया है ॥ ३७ ॥

अनेन धर्मः सविशेषमद्य मे त्रिवर्गसारः प्रतिभाति भाविनि !।
त्वया मनोनिर्विषयार्थकामया यदेक एव प्रतिगृह्य सेव्यते ॥ ३८ ॥

अन्वयः—हे भाविनि ! अनेन धर्मः सविशेषम् अद्य मे त्रिवर्गसारः प्रतिभाति यत् मनोनिर्विषयार्थकामया त्वया एकः धर्म एव प्रतिगृह्य सेव्यते।

व्याख्या--अनेनेति। हे भाविनि-प्रशस्तः भावो यस्याः सा, तत्सम्बुद्धौ= हे उदारहृदये ! अनेन=एतेन कारणेन। धर्मः=पुण्यम् ('स्याद् धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृत वृषः' इत्यमरः)। सविशेषम्-विशेषेण सहितं सविशेषम्-

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सातिशयम् । अद्य = अस्मिन् दिने । मे = मम । त्रिवर्गसार:-त्रयाणां वर्ग: त्रिवर्ग:, त्रिवर्गे सारस्त्रिवर्गसार: = धर्मार्थकामश्रेष्ठ:, प्रतिभाति = प्रतिस्फुरति । यत् = यस्मात् कारणात् । मनोनिर्विषयार्थकामया = निर्गतो विषय: याभ्यां तौ निर्विषयौ, मनस: निर्विषयौ मनोनिर्विषयौ, अर्थश्च कामश्च अर्थकामौ, मनोविषयौ अर्थकामौ यस्या: सा, मनोनिर्विषयार्थकामा, तया = अर्थकामपराङ्मुखचित्तया । त्वया = भवत्या । एक: = एकाकी । धर्म: = सुकृतम् । एव । प्रतिगृह्य = स्वीकृत्य । सेव्यते = अनुष्ठीयते ।

सरलार्थ:—हे भाविनी ! एतेन कारणेनार्थकामपराङ्मुखचित्तया त्वया केवलं धर्मं एव स्वमन: स्थिरं चकार तावदेतत्तु सिद्धमेव यद्धर्म: अर्थकामयो: श्रेष्ठ: अस्ति ।

हिन्दी—हे उदारहृदये ! इस प्रकार धर्म ही अब त्रिवर्ग (धर्मार्थकाम) में श्रेष्ठ ज्ञात होता है जिससे अर्थकाम से पराङ्मुख चित्तवाली तुमने अकेले धर्म को ही ग्रहण कर सेवन किया है ।।३८।।

प्रयुक्तसत्कारविशेषमात्मना न मां परं सम्प्रतिपत्तुमर्हसि ।
यत: सतां सन्नतगात्रि ! सङ्गतं मनीषिभि: साप्तपदीनमुच्यते ।।३९।।

अन्वय:—आत्मना प्रयुक्तसत्कारविशेषम् मां परं सम्प्रतिपत्तुं न अर्हसि; हे सन्नतगात्रि ! यत: मनीषिभि: सतां सङ्गतं साप्तपदीनम् उच्यते ।

व्याख्या—प्रयुक्तेति । आत्मना = स्वयम् । प्रयुक्तसत्कारविशेषम् = सत्कारस्य विशेष: सत्कारविशेष:; प्रयुक्त: सत्कारविशेष: यस्य स:, तम् = विहितसत्कारसातिशयम् । माम् = ब्रह्मचारिणम् । परम् = अन्यम् । सम्प्रतिपत्तुम् = अवगन्तुम् । न अर्हसि = न योग्याऽसि । हे सन्नतगात्रि !—सन्नतं गात्रं यस्या: सा, तत्सम्बुद्धौ = हे अवनम्रशरीरे ! यत: = यस्मात् कारणात् । मनीषिभि:—मनस: ईषिण: मनीषिण:, तै: = विद्वद्भि: । ('धीरो मनीषी ज्ञ: प्राज्ञ: सख्यावान् पण्डित: कवि:' इत्यमर:) । सतां = सज्जनानाम् । संगतम् = सख्यम् । साप्तपदीनम्–सप्तभि: पदै: अवाप्यते इति साप्तपदीनम् = सप्तपदसाध्यम् ('सख्यं साप्तपदीनं स्यात्' इत्यमर:) । उच्यते = कथ्यते ।

सरलार्थ:—(हे शोभने !) सज्जनानां मित्रता सङ्गमात्रादेव जायते ;

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अतः तव साक्षात् विशेषेणाहं ते सख्यसञ्जातः । यतो विद्वद्भिः सप्तपदसाध्यं सज्जनानां सख्यं कथितम् ।

हिन्दी—हे शोभने ! अपने द्वारा प्रयुक्त सत्कार-विशेष के कारण मुझे कोई अन्य न समझो क्योंकि विद्वानों ने सज्जनों की मित्रता सात कदमों (सात पदों) वाली (अर्थात् प्रथम समागम में ही होने) वाली कहा है ।।३९।

अतोऽत्र किञ्चिद्भवतीं बहुक्षमां द्विजातिभावादुपपन्नचापलः ।
अयं जनः प्रष्टुमनास्तपोधने ! न चेद्रहस्यं प्रतिवक्तुमर्हसि ।।४०।।

अन्वयः—हे तपोधने ! अतः अत्र बहुक्षमां भवतीं द्विजातिभावात् उपपन्नचापलः अयं जनः किञ्चित् प्रष्टुमनाः अस्ति, रहस्यं न चेत् प्रतिवक्तुम् अर्हसि ।

व्याख्या—अत इति । हे तपोधने—तप एव धनं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ हे तपोधने=अयि तपस्विनि ! अतः=अस्मात् कारणात् । अत्र=अस्मिन् विषये । बहुक्षमां-बहून् क्षमते या सा, ताम्=बहूक्तिसहाम् । भवतीं=त्वाम् । द्विजातिभावात्-द्वे जाती यस्य सः द्विजातिस्तस्य भावः, तस्मात्=ब्राह्मणत्वात् । उपपन्नचापलः-उपपन्नं चापलं यस्य सः=सुलभधार्ष्ट्यः, अयम्=एषः । जनः=लोकः (अहम्) । किञ्चित्=किमपि । प्रष्टुमनाः=प्रष्टुकामः अस्ति । रहस्यम्=गोपनीयम् । न चेत्=यदि न स्यात्, तर्हि प्रतिवक्तुम्=उत्तरं दातुम् । अर्हसि=योग्यासि ।

सरलार्थः—अयि तपस्विनि ! जातसख्यात् ब्राह्मणत्वात् सुलभधार्ष्ट्योऽहं क्षमावतीं भवतीं तपश्चरणविषये किञ्चित्प्रष्टुकामः अस्मि । यदि तत्कथनं गोपनीयं न स्यात्तर्हि मे प्रत्युत्तरं देहि ।

हिन्दी—हे तपोधने ! अतः इस विषय में बहुत-सी बातें सहन करने वाली आपसे ब्राह्मण-स्वभाव से सुलभधृष्ट मैं कुछ पूछना चाहता हूँ । यदि इसमें कोई रहस्य न हो तो प्रत्युत्तर दे सकती हो ।

टिप्पणी—द्विजाति—द्वे जाती यस्य सः द्विजातिः=ब्राह्मणः, अर्थात् ब्राह्मण को द्विजाति कहा जाता है, क्योंकि ब्राह्मण का माँ के गर्भ से प्रथम जन्म तथा वैदिक मन्त्रोच्चार के साथ मौञ्जीबन्धन (यज्ञोपवीत संस्कार) के समय द्वितीय जन्म माना जाता है । जैसा कि मनुजी ने कहा है—

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जीबन्धने ।। (मनुस्मृति १–१६९) ।।४०।।

कुले प्रसूतिः प्रथमस्य वेधसस्त्रिलोकसौन्दर्यमिवोदितं वपुः ।
अमृग्यमैश्वर्यसुखं नवं वयस्तपःफलं स्यात्किमतः परं वद ? ।।४१।।

अन्वयः—प्रथमस्य वेधसः कुले प्रसूतिः, वपुः त्रिलोकसौन्दर्यम् इव उदितम् । ऐश्वर्यसुखम् अमृग्यम्, वयः नवम्, अतः परं किं तपः फलं स्यात् वद ।

व्याख्या—कुल इति । प्रथमस्य = आदेः । वेधसः=ब्राह्मणः । कुले=वंशे । प्रसूतिः=उत्पत्तिः । वपुः=शरीरम् । त्रिलोकसौन्दर्यम्—सुन्दरस्य भावः सौन्दर्यम्, त्रयाणां लोकानां सौन्दर्यम् तत्=त्रिभुवनसुन्दरताम् । इव । उदितम्=एकत्रसमाहृतम् । ऐश्वर्यसुखम्—ईश्वरस्य भाव ऐश्वर्यम्, ऐश्वर्यस्य सुखम्=वैभवसुखम् ('विभूतिर्भूतिरैश्वर्यमणिमादिकमष्टधा' इत्यमरः) । अमृग्यम्—न मृग्यममृग्यम्=अगवेषणीयम् । वयः=आयुः । नवम्=नवीनम् । अतः परम्=अस्माद् विशिष्टम् । किं तपः फलं=किं तपस्यायाः परिणामम् । स्यात्=भवेत् इति वद=कथय ।

सरलार्थः—आदिब्रह्मणः वंशे तवोत्पत्तिः त्रिभुवनसुन्दरमिव ते शरीरम् एकत्र समाहृतम् । वैभवसुखं नान्वेषणीयम् । अस्मादत्यधिकं तपस्याफलं किं भवेत् इति कथय ।

हिन्दी—आदिपुरुष विधाता के वंश में तुम्हारा जन्म, त्रिभुवन के सौन्दर्य जैसा सुन्दर शरीर तथा ऐश्वर्य सुख कहीं ढूंढ़ना नहीं है (सुलभ ही है) अतः अब इससे बढ़कर और तपस्या का फल क्या हो सकता है, बतलाओ ।।४१।।

भवत्यनिष्टादपि नाम दुःसहान्मनस्विनीनां प्रतिपत्तिरीदृशी ।
विचारमार्गप्रहितेन चेतसा न दृश्यते तच्च कृशोदरि ! त्वयि ।।४२।।

अन्वयः—दुःसहात् अनिष्टात् अपि मनस्विनीनाम् ईदृशी प्रतिपत्तिः भवति नाम । हे कृशोदरि ! विचारमार्गप्रहितेन चेतसा तद् च त्वयि न दृश्यते ।

व्याख्या—भवतीति । दुःसहात्—दुःखेन सोढुं शक्यं दुःसहं, तस्मात्=असह्यात् । अनिष्टात्=अप्रियात् अपि । मनस्विनीनाम्=मानिनीनाम् ईदृशी=एतद्विधा । प्रतिपत्तिः=प्रवृत्तिः भवति नाम ('प्रतिपत्तिस्तु गौरवे । प्राप्तौ

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रवृत्तौ प्रागल्भ्ये' इति केशवः)। हे कृशोदरि-कृशं उदरं यस्याः सा, तत्सम्बुद्धौ=हे कृशशरीरे। विचारमार्गप्रहितेन-विचारस्य मार्गः विचारमार्गः तस्मिन् प्रहितं, तेन=विचारपथप्रेषितेन। चेतसा=चित्तेन। तत् च=पूर्वोक्तम्। त्वयि=भवत्याम्। दृश्यते=नावलोक्यते ('चित्तं तु चेतः हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः' इत्यमरः)।

सरलार्थः—हे क्षीणोदरि ! अन्यैः सम्पादितादनिष्टाद् अपि मानिन्यः स्त्रियः कदाचित् दुष्करं तपश्चरन्ति। परन्तु तदनिष्टमपि त्वयि सम्भावना न प्रतीयते।

हिन्दी—हे कृशोदरि ! दुःसह अनिष्ट से भी ऐसी मानिनी स्त्रियों की प्रवृत्ति कभी-कभी हो जाती है पर मेरे विचार से तुम पर उस प्रकार के अनिष्ट होने की सम्भावना भी प्रतीत नहीं होती ॥४२॥

अलभ्यशोकाभिभवेयमाकृतिर्विमानना सुभ्रू? कुतः पितुर्गृहे?।
पराभिमर्शो न तवास्ति कः करं प्रसारयेत्पन्नगरत्नसूचये ॥४३॥

अन्वयः—हे सुभ्रू ! इयम् आकृतिः अलभ्यशोकाभिभवा, पितुः गृहे विमानना कुतः ? पराभिमर्शः तव न अस्ति। पन्नगरत्नसूचये कः करं प्रसारयेत्।

व्याख्या—अलभ्येति। सुभ्रू-शोभनौ भ्रुवौ यस्याः सा, तत्सम्बुद्धौ=शोभनभ्रूयुक्ते ! इयम्=एषा, आकृतिः=स्वरूपम् अलभ्यशोकाभिभवा-लब्धुं योग्यः लभ्यः, न लभ्यः अलभ्यः, शोकेन अभिभवः, शोकाभिभवः, अलभ्यः शोकाभिभवः यस्याः सा=अप्राप्यदुःखतिरस्कारा। पितुः=तातस्य हिमालयस्य। गृहे=गेहे। विमानना=अवमानना। कुतः=कस्मात् भवतीति। पराभिमर्शः-परस्य अभिमर्शः पराभिमर्शः=अन्यधर्षणम्। तव=ते। नास्ति=नैव वर्तते। पन्नगरत्नसूचये-पन्नगस्य रत्नं पन्नगरत्नं तस्य सूचिस्तस्मै=सर्पमणिप्राप्तये ('उरगः पन्नगो भोगी जिह्मगः पवनाशनः' इत्यमरः)। कः=को नरः। करं=हस्तम्। प्रसारयेत्=प्रसारितं कुर्यात्, अर्थात् न कोऽपि हस्तं प्रसारयेदिति।

सरलार्थः—हे शोभनभ्रूयुक्ते ! एष तवाकारः अप्राप्यक्लेशतिरस्कारः, न प्रतिभाति। पितृभवने ते अवमाननायाः कल्पनैव न सम्भाव्यते। अन्यधर्षणमपि तव नास्ति। सर्पमणिप्राप्तये न कोऽपि नरः हस्तं प्रसारयेत्।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हे सुभ्रू ! यह तुम्हारी आकृति ऐसी है जिससे किसी प्रकार का शोक पड़ा दिखाई नहीं पड़ता है। पिता के घर पर तुम्हारा अपमान हो ही नहीं सकता। फिर दूसरों के द्वारा किसी प्रकार के दुःख की भी सम्भावना नहीं हो सकती। ऐसा कौन साहसी व्यक्ति है जो कि सर्पमणि पाने के लिए हाथ फैलाए ॥४३॥

किमित्यपास्याऽऽभरणानि यौवने धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम् ।
वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी यद्यरुणाय कल्पते ॥४४॥

अन्वयः – (हे गौरि !) किम् इति यौवने त्वया आभरणानि अपास्य वार्धकशोभिवल्कलं धृतं, प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी अरुणाय कल्पते यदि वद ।

व्याख्या—(हे गौरि !) किमिति=केन कारणेन। यौवने=युवावस्थायाम्। त्वया=भवत्या। आभरणानि=भूषणानि। अपास्य=विहाय। वार्धकशोभि–वृद्धस्य भावो वार्धकम्, तस्मिन् शोभत इति वार्धकशोभि=वृद्धत्वमनोरमम्। वल्कलं=वल्कम्। धृतम्=धारितम्। प्रदोषे=संध्याकाले ('प्रदोषो रजनीमुखम्' इत्यमरः)। स्फुटतारका-स्फुटाः=स्पष्टाः तारकाः=नक्षत्राणि यस्यां सा=व्यक्तनक्षत्रा। विभावरी=रात्रिः। अरुणाय=सूर्यसारथिने। कल्पते=गन्तुं कल्पनां करोति। यदि=चेत्। वद=कथय।

सरलार्थः—हे गौरि ! युवावस्थायां त्वया केन कारणेनाभूषणानि परित्यज्य वृद्धावस्थाशोभि वल्कलं धारितम्। संध्याकाले स्फुटनक्षत्रा रात्रिः यदि सूर्याय कल्पनां करोति तर्हि ब्रूहि।

हिन्दी—हे गौरि ! युवावस्था में तुमने आभूषणों को छोड़कर जो बुढ़ापे की शोभा बढ़ाने वाले वल्कल धारण किये हैं। बतलाओ, क्या सन्ध्याकाल में नक्षत्रों-भरी रात्रि सूर्य की कल्पना करती है ? ॥४४॥

ब्रह्मचारी तपसः प्रयोजनान्तरं पृच्छति—

दिवं यदि प्रार्थयसे वृथा श्रमः पितुः प्रदेशास्तव देवभूमयः ।
अथोपयन्तारमलं समाधिना न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ॥४५॥

अन्वयः—यदि दिवं प्रार्थयसे (तर्हि) श्रमः वृथा, तव पितुः प्रदेशाः देवभूमयः। अथ उपयन्तारं प्रार्थयसे (तर्हि) समाधिना अलम्। रत्नं न अन्विष्यति, हि तत् मृग्यते।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याख्या—दिवमिति । यदि=चेत् । त्वम्=भवती । दिव्यं=स्वर्गलोकम् । प्रार्थयसे=प्रार्थनां करोषि ('सुरलोको द्यो दिवौ द्वे स्त्रियां क्लीबे त्रिविष्टपम्' इत्यमरः) । (तर्हि) श्रमः=उद्योगः । वृथा=व्यर्थम् । तव=ते । पितुः=तातस्य हिमालयस्य । प्रदेशाः=राज्यभागाः । देवभूमयः=देवस्थलानि । अथ=अनन्तरम् । उपयन्तारम्–उपयच्छतीति उपयन्ता, तम्=पतिम् । प्रार्थयसे=याचयसे । चेत् तर्हि, समाधिना=चित्तनिरोधवृत्त्या । अलम्=निषेधेऽव्ययः । रत्नम्=मणिः । न अन्विष्यति=धारकं न मृगयते । तत्=रत्नम् । स्वतःधारकैः, मृग्यते=अन्विष्यते । अत्रोत्प्रेक्षालंकारः ।

सरलार्थः—(हे गौरि !) त्वमनया तपस्यया स्वर्गं याचसे तर्हि ते परिश्रमो व्यर्थः, यतः तव पितुः राज्यस्थानानि देवस्थलान्येव । अथवा पतिप्राप्तये प्रार्थयसे तर्हि चित्तनिरोधवृत्त्याऽलम् । रत्नं कदापि नैनान्विष्यति, तत्तु स्वतःधारकैरन्विष्यते ।

हिन्दी—हे गौरि ! यदि तुम स्वर्गप्राप्ति के लिए प्रार्थना करती हो तो तप करने का परिश्रम करना व्यर्थ है, क्योंकि तुम्हारे पिता का राज्य (प्रदेश) ही देव-भूमि है । अथवा पति पाने के लिए तुम तपस्या कर रही हो तो समाधि लगाना व्यर्थ है । रत्न ग्राहक को नहीं ढूंढ़ता है बल्कि ग्राहकों द्वारा ही रत्न खोज लिए जाते हैं ।।४५।।

निवेदितं निश्वसितेन सोष्मणा मनस्तु मे संशयमेव गाहते ।
न दृश्यते प्रार्थयितव्य एव ते भविष्यति प्रार्थितदुर्लभः कथम् ।।४६।।

अन्वयः—सोष्मणा निश्वसितेन निवेदितं, मनः तु मे संशयम् एव गाहते. ते प्रार्थयितव्यः एव न दृश्यते, प्रार्थितदुर्लभः कथं भविष्यति ।

व्याख्या—निवेदितमिति । सोष्मणा–ऊष्मणा सहितं सोष्मं, तेन=उष्णतासहितेन । निश्वसितेन=निश्वसनेन । निवेदितं=यत्त्वया कथितम् । मनस्तु=चेतस्तु । मे=मम । संशयम्=सन्देहम् । एव, गाहते=प्राप्नोति । (कुतः) ते=तव । प्रार्थयितव्य एव=प्रार्थयितुं योग्यः एव । न दृश्यते=नैवावलोक्यते । प्रार्थितदुर्लभः—दुःखेन लब्धुं शक्यः दुर्लभः, प्रार्थितश्चासौ दुर्लभः प्रार्थितदुर्लभः=याचितदुष्प्राप्यः । कथम्=केन प्रकारेण । भविष्यति=भविता ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सरलार्थः—सोष्णदीर्घश्वसनेन यत्त्वया कथितम्, तथापि मे चेतः सन्देहमेव प्राप्तम् । तव प्रार्थितुमर्हः न कश्चिज्जनः दृश्यते । ते याचितदुष्प्राप्यः पुरुषः असम्भवः अस्तीति ।

हिन्दी—(हे गौरि !) लम्बी-लम्बी गर्म निःश्वास से तुमने जो प्रकट किया इससे अनुमान करता हूँ कि योग्य वर प्राप्ति ही इस तपस्या का कारण है । तथापि मेरे चित्त में संशय है, क्योंकि तुम्हारा प्रार्थित कोई व्यक्ति दिखलाई ही नहीं पडता है फिर भी कोई तुम्हारा प्रार्थित पुरुष होगा यह सम्भव नहीं है ॥४६॥

अहो ! स्थिरः कोऽपि तवेप्सितो युवा चिराय कर्णोत्पलशून्यतां गते ।
उपेक्षते यः श्लथलम्बिनीर्जटाः कपोलदेशे कलमाग्रपिङ्गलाः ॥४७॥

अन्वयः—अहो ! तव ईप्सितः युवा कः अपि स्थिरः, यः चिराय कर्णोत्पलशून्यतां गते कपोलदेशे श्लथलम्बिनीः कलमाग्रपिङ्गलाः जटाः उपेक्षते ।

व्याख्या—अहो इति । अहो=आश्चर्यम् । तव=ते, पार्वत्याः । ईप्सितः=अभीष्टः युवा=युवकः । कः=कश्चिद् अपि । स्थिरः=कठिनः वर्तते । यः चिराय=चिरकालाय । कर्णोत्पलशून्यता--कर्णयोः उत्पले कर्णोत्पले, ताभ्यां शून्यः, तस्य भावस्ताम्=श्रोत्रोत्पलराहित्यम् । गते=प्राप्ते । कपोलदेशे=गण्डस्थले । श्लथलम्बिनी-लम्बन्त इति लम्बिन्यः श्लथाश्च ताः लम्बिन्यस्ताः=शिथिलावस्रंसिनीः । कलमाग्रपिङ्गलाः--कलमानामग्राणि कलमाग्राणि तानि इव पिङ्गलाः कलमाग्रपिङ्गलाः=शाल्यग्रकपिलाः । जटाः=सटाः ('जटा सटा केशरयोः शिरोरुहा' इत्यमरः) । उपेक्षते=उपेक्षां करोति ।

सरलार्थः—आश्चर्यं, यत्तवाभीप्सितः कश्चिदपि युवा न वर्तते यश्चिरात् कर्णाभूषणरहितत्वकपोलस्थले शिथिलावस्रंसिनीः शाल्यग्रकपिलाः सटाः उपेक्षां करोति ।

हिन्दी--आश्चर्य है कि तुम्हारा चाहा हुआ कोई भी युवा अत्यन्त कठोर हृदय है जो कि चिरकाल से तुम्हारे कर्णाभूषणरहित कपोल स्थलों पर लटकती हुई कलमधान (विशेष प्रकार) की बालियों के समान पिङ्गलवर्ण जटाओं की उपेक्षा करता है (निश्चय ही वह कठोर हृदय है) ॥४७॥

मुनिव्रतैस्त्वामतिमात्रकर्शितां दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदाम् ।
शशाङ्कलेखामिव पश्यतो दिवा सचेतसः कस्य मनो न दूयते ॥४८॥

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्वयः—मुनिव्रतैः अतिमात्रकर्शितां दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदां दिवा शशाङ्कलेखाम् इव त्वां पश्यतः सचेतसः कस्य मनः न दूयते ।

व्याख्या—मुनिव्रतैरिति । मुनिव्रतैः=मुनीनां व्रतानि मुनिव्रतानि, तैः= महर्षियमनियमादिभिः ! अतिमात्रकर्षितां-अतिमात्रं यथा स्यात्तथा कर्षिता, ताम्=अतिदुर्बलाम् । दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदां—विभूषणानामास्पदानि विभूषणास्पदानि, दिवाकरे अप्लुष्टानि विभूषणास्पदानि यस्याः सा, ताम्= सूर्यदग्धभूषणस्थानाम् । दिवा=दिने । शशाङ्कलेखाम् इव-शशः अङ्के यस्य सः शशाङ्कः=चन्द्रः, तस्य या लेखा=रेखा, ताम् इव । त्वाम्=पार्वतीम् । पश्यतः= अवलोकयतः । सचेतसः-चेतसा सहितः सचेतस्तस्य सचेतसः=सहृदयस्य । कस्य=कस्य जनस्य । मनः=चेतः । न दूयते=न परितप्यते, अपितु सर्वस्यैव तप्यत इत्याशयः ।

सरलार्थः—तपश्चरणैरतिकृशां सूर्यदग्ध-विभूषणस्थानां दिवसे धूसरितां चन्द्रलेखामिव त्वामवलोकयतः कस्य कठोरचेतसः जनस्य चित्तं न परितप्यते ।

हिन्दी—तपस्या के कारण अत्यन्त कृश, सूर्य से दग्ध श्याम वर्ण वाली दिन में धूमिल चन्द्रलेखा के समान तुम्हें देखकर किसका मन दुःखी नहीं हो जाता है (अर्थात् सबका दुःखी हो जाता होगा) ॥४८॥

अवैमि सौभाग्यमदेन वञ्चितं तव प्रियं यश्चतुरावलोकिनः ।
करोति लक्ष्यं चिरमस्य चक्षुषो न वक्त्रमात्मीयमरालपक्ष्मणः ॥४९॥

अन्वयः—तव प्रियं सौभाग्यमदेन वञ्चितम् अवैमि । यः चतुरावलोकिनः अरालपक्ष्मणः अस्य चक्षुषः आत्मीयं वक्त्रं चिरं लक्ष्यं न करोति ।

व्याख्या—अवैमीति । तव=ते, पार्वत्याः । प्रियं=वल्लभम् । सौभाग्य-मदेन=सौभाग्यस्य मदः तेन=सौन्दर्याभिमानेन । वञ्चितम्=रहितम् । अवैमि= जानामि । यः=प्रियः । चतुरावलोकिनः-चतुरं यथा स्यात्तथा अवलोकयते यस्तस्य=प्रियदर्शिनः । अरालपक्ष्मणः-अरालानि पक्ष्माणि यस्य, तत्, तस्य= अरालपक्ष्मणः=कुटिलरोम्णः ('अरालं वृजिनं जिह्मम्' इत्यमरः) । अस्य= एतस्य । चक्षुषः=नयनस्य । आत्मीयम्=स्वीयम् । वक्त्रम्=आननम् । चिरम्= बहुकालपर्यन्तम् । लक्ष्यम्=दृष्टिविषयम् । न करोति=न विदधाति ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सरलार्थः—यः युवस्तेऽभीष्टः प्रियः नूनमेव सः भाग्यप्रतारितोऽस्ति चतुरदृष्टिः सः वक्ररोम्णः अस्य नेत्रस्यात्मीयं मुखं चिरकालं लक्ष्यविषयं न करोति।

हिन्दी—(हे गौरि !) तुम्हारा प्रेमी सौन्दर्यमद से वञ्चित मालूम पड़ता है जो कि चतुर दृष्टिवाली तथा कुञ्चित रोमवाली तुम्हारी आँख के लिए अपने मुख को अवश्य उपस्थित कर देता ॥४९॥

कियच्चिरं श्राम्यसि गौरि ! विद्यते ममापि पूर्वाश्रमसञ्चितं तपः ।
तदर्द्धभागेन लभस्व काङ्क्षितं वरं तमिच्छामि च साधु वेदितुम् ॥५०॥

अन्वयः—हे गौरि ! कियत् चिरं श्राम्यसि ? मम अपि, पूर्वाश्रमसञ्चितं तपः विद्यते । तदर्धभागेन कांक्षि वरं लभस्व । तं साधु वेदितुम् इच्छामि ।

व्याख्या—कियदिति । हे गौरि=हे पार्वती ! कियत् चिरम्=कियदवधिपर्यन्तम् । श्राम्यसि=श्रमं करिष्यसि तपश्चरिष्यसि ! मम=मे । अपि । पूर्वाश्रमसञ्चितं-पूर्वाश्रमे=ब्रह्मचर्याश्रमे सञ्चितम्=संगृहीतम् । तपः=तपस्या । विद्यते=वर्तते । तदर्धभागेन-तस्य=ततपसः अर्द्धभागेन । कांक्षितम्=वांछितम् ('इच्छा कांक्षा स्पृहा तृड् वाञ्छा लिप्सा मनोरथः' इत्यमरः) । वरम्=पतिम् । लभस्व=प्राप्नुहि । तं=वांछितं वरं नाम्ना । साधु=सम्यक् । वेदितुम्=ज्ञातुम् । इच्छामि=अभिलषामि ।

सरलार्थः—हे गौरि ! कियत्कालं यावत्त्वं तपस्यसि ? ब्रह्मचर्याश्रमे मया बहुतपः सञ्चितम् । तस्यार्धेन त्वं कांक्षितं वरं प्राप्नुहि । नाम्ना तं वरमहं ज्ञातुमिच्छामि ।

हिन्दी—हे गौरि ! कितनी देर तक (कबतक) तुम तप करोगी ? मैंने ब्रह्मचर्याश्रम में तप का संचय किया है । (अतः) उसके अर्द्धभाग के पुण्य से तुम वांछित पति प्राप्त कर लो । परन्तु मैं तुम्हारे इस वांछित वर का नाम गोत्रादि जानना चाहता हूँ ॥५०॥

इति प्रविश्याभिहिता द्विजन्मना मनोगतं सा न शशाक शंसितुम् ।
अथो वयस्यां परिपार्श्ववर्तिनीं विवर्तितानञ्जननेत्रमैक्षत ॥५१॥

अन्वयः—इति द्विजन्मा प्रविश्य अभिहिता सा मनोगतं शंसितुं न शशाक । अथो परिपार्श्ववर्तिनीं वयस्यां विवर्तितानञ्जननेत्रम् ऐच्छत् ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याख्या—इति प्रविश्येति । इति=एवम् । द्विजन्मना–द्वे जन्मनी यस्य सः, तेन=विप्रेण । प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा । अभिहिता=कथिता । सा=पार्वती । मनोगतं=मनसि गतः मनोगतस्तम्=चेतोवर्तिनम् । शंसितुं=सूचयितुम् । न शशाक=समर्था न बभूव । अथो=अनन्तरम्('मङ्गलाऽनन्तराऽऽरम्भप्रश्नकात्स्न्येंष्वथो अथ' इत्यमरः) । परिपार्श्ववर्तिनीं=समीपवर्तिनीम् । वयस्यां=सखीम् ('आलिः सखी वयस्या च' इत्यमरः) । विवर्तितानञ्जननेत्रम्-अविद्यमानमञ्जनं यस्मिस्तत् अनञ्जनम्, तथा विवर्तितम् नेत्रं यस्मिस्तद्विवर्तितानञ्जननेत्रम्=विचालिताऽऽकज्जललोचनम् । ऐच्छत्=अपश्यत् ।

सरलार्थः—एवं विप्रेण प्रविश्य कथिता पार्वती चित्तवर्तिनं वरं सूचयितुं न शशाक । तदनन्तरं समीपवर्तिनीं सखीं तन्मुखावलोकनमात्रेण तां निजमनोगतसूचनार्थं प्रेरितवती ।

हिन्दी—इस प्रकार ब्राह्मण के प्रवेश कर कहने पर पार्वती अपने मनोगत वर को बताने में समर्थ न हो सकी । तब समीपवर्तिनी सखी से काजल लगी आँखें चला कर देखा, कहने के लिए संकेत किया ॥५१॥

सखी तदीया तमुवाच वर्णिनं निबोध साधो ! तव चेत्कुतूहलम् ।
तदर्थमम्भोजमिवोष्णवारणं कृतं तपःसाधनमेतया वपुः ॥५२॥

अन्वयः—तदीया सखी तं वर्णिनम् इव उवाच हे साधो ! तव कुतूहलं चेत् निबोध यदर्थम् एतया अम्भोजं उष्णवारणम् वपुः तपः साधनं कृतम् ।

व्याख्या—सखीति । तदीया=तस्याः । सखी=आलिः । तम्=आगतम् । वर्णिनं=ब्रह्मचारिणम् । उवाच=प्राह । हे साधो=हे तपस्विन् ! तव=ते । कुतूहलम्=कौतुकम् ('कौतूहलं कौतुकं च कुतुकं च कुतूहलमि'त्यमरः) । चेत्=यदि । निबोध=जानीहि । यदर्थम्=यन्निमित्तम् । एतया=अनया मे सख्या पार्वत्या । अम्भोजम्=कमलम् । उष्णवारणम् इव=आतपत्रम् इव । वपुः=शरीरम् । तपःसाधनम्–तपसः साधनं तपःसाधनं, तत्=तपस्याकरणम् । कृतम्=विहितम् । अत्रोपमालङ्कारः ।

सरलार्थः—तस्याः सखी तं ब्रह्मचारिणमुक्तवती—हे साधो ! यदि तव कौतुकमस्ति तर्हि अवगच्छ, यत् कारणमनया कमलम् आतपत्रमिव शरीरं तपःसाधनत्वेन नियोजितम् ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिन्दी—पार्वती की सहेली ने उस ब्रह्मचारी से कहा—हे साधो ! यदि तुम्हें कौतूहल है तो समझ लो कि किस कारण इन्होंने कमल सदृश कोमल शरीर को उग्र तप करने में लगा रखा है ॥५२॥

इयं महेन्द्रप्रभृतीनधिश्रियश्चतुर्दिगीशानवमत्य मानिनी ।
अरूपहार्यं मदनस्य निग्रहात् पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति ॥५३॥

अन्वयः—मानिनी इयम् अधिश्रियः महेन्द्रप्रभृतीन् चतुर्दिगीशान् अवमत्य मदनस्य निग्रहात् अरूपहार्यं पिनाकपाणिं पतिम् आप्तुम् इच्छति ।

व्याख्या—इयमिति । मानिनी–प्रशस्तः मानोऽस्याः इति मानिनी= गर्विणी । इयम्=एषा मे सखी । अधिश्रियः–अधिका श्रीः येषां ते अधिश्रियः= महदैश्वर्यान् । महेन्द्रप्रभृतीन्=शक्रादीन् । चतुर्दिगीशान्=चत्वारश्च दिगीशाः, तान्=इन्द्र-यम-वरुण-कुबेरान् । अवमत्य=अनादृत्य । मदनस्य=कामस्य । निग्रहात्=निर्वहणाद् । अरूपहार्यम्–रूपेण हार्यः रूपहार्यः न रूपहार्य इत्यरूपहार्यस्तम्=असौन्दर्यवर्णम् । पिनाकिनम्–पिनाकमस्यास्तीति पिनाकी, तम्= धनुर्धारिणं शिवम् । पतिम्=भर्तारम्, आप्तुम्=प्राप्तुम् । इच्छति=अभिलषति ('पिनाकोऽजगवं धनुरि'त्यमरः) ।

सरलार्थः—स्वाभिमानिनी मे सखी महदैश्वर्यान् शक्रादीननादृत्य कामस्य निवर्हणात् असौन्दर्यवर्णं शिवं पतिरूपेण प्राप्तुमिच्छति ।

हिन्दी—स्वाभिमानिनी मेरी सखी महान् ऐश्वर्यशाली इन्द्र आदि चारों दिग्पालों का अनादर कर मदन के निग्रह से असुन्दर वर्ण वाले पिनाकी शिव जी को पति के रूप में प्राप्त करना चाहती है ॥५३॥

अथ दग्धेऽपि कामे कामवेदनां वर्णयति—

असह्यहुङ्कारनिवर्तितः पुरा पुरारिमप्राप्तमुखः शिलीमुखः ।
इमां हृदि व्यायतपातमक्षिणोद्विशीर्णमूर्तेरपि पुष्पधन्वनः ॥५४॥

अन्वयः—पुरा असह्यहुङ्कारनिवर्तितः पुरारिम् अप्राप्तमुखः विशीर्णमूर्त्तेः अपि पुष्पधन्वनः शिलीमुखः इमां हृदि व्यायतपातम् अक्षिणोत् ।

व्याख्या—असह्येति । पुरा=प्राक् असह्यहुङ्कारनिवर्तितः- न सह्यः असह्यः, असह्यश्चासौ हुङ्कारः, तेन निवर्तितः=दुःसहहुङ्कृतिपरवर्तितः । पुरा-

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रिम्-पुरस्यारि: पुरारिस्तम्=महादेवम् । अप्राप्तमुख:—न प्राप्तमप्राप्तम्, अप्राप्तं मुखं यस्य स:, अप्राप्तमुख:=अलब्धफल: । विशीर्णमूर्त्तेः-विशीर्णा मूर्तिर्यस्य स:, तस्य=दग्धाकृते: ('मूर्ति: काठिन्यकाययो:' इत्यमर:) । अपि । पुष्पधन्वन:—पुष्पाणां धनुर्यस्य स:, तस्य=कुसुमकार्मुकस्य कामस्य । शिलीमुख:=शर: ('अलिबाणौ शिलीमुखौ' इत्यमर:) । इमां=पार्वतीम् । हृदि=चेतसि । व्यायतपातम्—विशेषेणायत: पात: यस्मिंस्तत्=दीर्घप्रहारम् । अक्षिणोत्=अकर्षत् ।

सरलार्थ:—पुरा दु:सहहुङ्कारपरावर्तित: शिवम् अलब्धवदन: नष्टरूपस्यापि कुसुमकार्मुकस्य कामस्य शर: इमां पार्वतीं हृदि दीर्घप्रहारमकरोत् ।

हिन्दी—पहले दु:सह हुङ्कार से परावर्तित, शिव को दग्ध स्वरूप वाले भी पुष्पधन्वा काम के बाण ने इन पार्वती के हृदय पर दीर्घ प्रहार किया ।।५४।।

तदा प्रभृत्युन्मदना पितुर्गृहे ललाटिकाचन्दनधूसरालका ।
न जातु बाला लभते स्म निर्वृतिं तुषारसङ्घातशिलातलेष्वपि ।।५५।।

अन्वय:—तदाप्रभृति पितु: गृहे उन्मदना ललाटिकाचन्दनधूसरालका बाला जातु तुषारसंघातशिलातलेषु अपि निर्वृत्तिं न लभते स्म ।

व्याख्या—तदेति । तदाप्रभृति=तदारभ्य । पितु:=तातस्य हिमालयस्य । गृहे=गेहे । उन्मदना—उत्कट: मदन: यस्या: सा, उन्मदना=उत्कटकामा । ललाटिकाचन्दनधूसराऽलका—ललाटे भव:, ललाटक:=अलङ्कार: यस्या: सा ललाटिका, ललाटिकाया: चन्दनं, तेन धूसरा: अलका: यस्या सा=तिलकचन्दनधूसरकेशा । ('ललाटमलिकं गोधि: इति, पत्रपाश्या ललाटिका' इति चाप्यमर:) । बाला=पार्वती । जातु=कदाचित् । तुषारसंघातशिलातलेषु—तुषाराणां संघाता: तुषारसंघाता: तेषां शिलातलानि, तेषु=हिमघनप्रस्तरतलेषु । अपि निर्वृत्तिम्=सुखम् । न लभते स्म=न प्राप्नोति स्म ।

सरलार्थ:—तेन कामबाणेनाहताऽपि जर्जरिता पार्वती निरन्तरं हिमालयस्य शीतलोपचारै:, तिलकचन्दनलेपैरपि कामाग्नि-शान्ति न प्राप्तवती, तदाप्रभृति मे सखी सुखं नावाप ।

हिन्दी—तब से पिता के घर पर उन्मदना, तिलक चन्दन से धूसरित अलकों वाली पार्वती कदाचित् हिमालय के शीतल उपचारों से भी सुख नहीं पा सकी ।।५५।।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपात्तवर्णे चरिते पिनाकिनः सबाष्पकण्ठस्खलितैः पदैरियम् ।
अनेकशः किन्नरराजकन्यका वनान्तसंगीतसखीररोदयत् ॥५६॥

अन्वयः—इयं पिनाकिनः चरिते उपात्तवर्णे सबाष्पकण्ठस्खलितैः पदैः, वनान्तसङ्गीतसखीः किन्नरराजकन्यकाः अनेकशः अरोदयत् ।

व्याख्या—उपात्तवर्ण इति । इयम्=एषा पार्वती । पिनाकिनः-पिनाकमस्यास्तीति पिनाकी, तस्य=शिवस्य । चरिते=आचरणे । उपात्तवर्णे—उपात्तः वर्णः यस्य तत्, तस्मिन्=प्रारब्धगीतक्रमे ('गीतक्रमे स्तुतौ वेदे वर्णशब्दः प्रयुज्यते' इति हलायुधः) । सबाष्पकण्ठैः-बाष्पैः सहितः सबाष्पः सबाष्पश्चासौ कण्ठः इति तस्मिन् स्खलितानि, तैः=साश्रुकण्ठनिर्गतैः । पदैः=शब्दैः । वनान्तसङ्गीतसखीः-वनस्यान्तं वनान्तं, तस्मिन् सङ्गीतं तेन निमित्तेन सख्यस्ताः=वनमध्यगानवयस्याः । किन्नरराजकन्यकाः-किन्नराणां=किम्पुरुषाणां राजानः= स्वामिनः तेषां कन्यकाः=सुतास्ताः । ('स्यात्किन्नरः किंपुरुषः तुरङ्गवदनो मयुः' इत्यमरः) । अनेकशः=बहुशः । अरोदयत्=रुरोद ।

सरलार्थः—भगवतः शम्भोश्चरितश्रवणाकांक्षया यदा पार्वती सङ्गीताभ्यासव्याजेन किन्नरराजसुतानां समक्षं शिवचरितगानं प्रक्रमते तदा तच्चरितस्मरणेनार्द्रकण्ठा भूयोभूयः रुदती सा अन्यानपि रोदयति ।

हिन्दी—यह पार्वती भगवान् शिव के चरित का गान आरम्भ करते ही बाष्पावरुद्धकण्ठ शब्दों से वनमध्य सङ्गीत के अभ्यास के बहाने किन्नरराजकन्याओं को भी स्वयं रोती हुई रुला देने लगी ॥५६॥

अधुना मदनस्वप्नदशां वर्णयति—

त्रिभागशेषासु निशासु च क्षणं निमील्य नेत्रे सहसा व्यबुध्यत ।
क्व नीलकण्ठ ! व्रजसीत्यलक्ष्यवागसत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना ॥५७॥

अन्वयः—त्रिभागशेषासु निशासु क्षणं नेत्रे निमील्य सहसा 'हे नीलकण्ठ ! क्व व्रजसि इति अलक्ष्यवाक् असत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना च सती व्यबुध्यत ।

व्याख्या—त्रिभागेति । त्रिभागशेषासु-शिष्यते इति शेषः, त्रिभ्यः भागेभ्यः शेषास्तासु=त्रिभागावशिष्टेषु । निशासु=रात्रिषु ('निशा निशीथिनी रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपा' इत्यमरः) । क्षणं=निमिषम् । नेत्रे=चक्षुषी । निमील्य=

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मेलयित्वा । सहसा=सद्यः । हे नीलकण्ठ–नीलः=नीलवर्णः कण्ठः=गलप्रदेशः यस्य सः, तत्सम्बुद्धौ=हे महादेव ! क्व=कुत्र । व्रजसि=यासि । इति=एवम् । अलक्ष्यवाक्—लक्षितुं योग्या लक्ष्या, न लक्ष्याऽलक्ष्या, यस्या वाक् सा अलक्ष्यवाक्=अदृश्यवाणी । असत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना–असत्यश्चासौ कण्ठः असत्यकण्ठः, बाहुरेव बन्धनं बाहुबन्धनम्, असत्यकण्ठे अर्पितं बाहुबन्धनं यस्याः सा=मिथ्यागलकृतभुजबन्धना च सती । व्यबुध्यत=जागर्तिस्म । ('सत्यं तथ्यमृतं सम्यगमूनि त्रिषु तद्वति' इत्यमरः) ।

सरलार्थः—विरहवेदनापीड़िता पार्वती रात्रौ न सुस्वपतिस्म । निशान्तप्रहरे किञ्चित्स्वपती स्वप्नदशायां–हे नीलकण्ठ ! क्व यासि ? एव निर्विषयवाग्व्यापाराऽसत्यकृतालिङ्गना च सती शीघ्रमेव जागृता भवतिस्म ।

हिन्दी—रात भर न सोकर जब चौथे पहर (रात्रि के अन्तिम प्रहर) में आँखें मींचकर सहसा स्वप्नदशा में हे नीलकण्ठ ! तुम कहाँ जा रहे हो ? इस प्रकार कहकर पार्वती चिल्ला पड़ती तथा जग जाती थी ॥५७॥

यदा बुधैः सर्वगतस्त्वमुच्यसे न वेत्सि भावस्थमिमं कथं जनम् ।
इति स्वहस्तोल्लिखितश्च मुग्धया रहस्युपालभ्यत चन्द्रशेखरः ॥५८॥

अन्वयः—यदा त्वं बुधैः सर्वगतः उच्यसे, ततः भावस्थम् इमं जनं कथं न वेत्सि । इति मुग्धया स्वहस्तोल्लिखितः चन्द्रशेखरः रहसि उपालभ्यत ।

व्याख्या—यदेति । यदा=यतः । त्वम्=भवान् । बुधैः=विद्वद्भिः । सर्वगतः=सर्वव्यापकः । उच्यसे=कथ्यसे । ततः=तस्मात् कारणात् । भावस्थम्–भावे तिष्ठतीति भावस्थः, तम्=अनुरागिणम् । इमम् जनम्=लोकम्, मद्रूपम् । कथं=केन प्रकारेण । न वेत्सि=न जानासि । इति=एवम् । मुग्धया=मूढया । स्वहस्तोल्लिखितः–स्वहस्तेन उल्लिखितः=निजकरचित्रितः । चन्द्रशेखरः–चन्द्रः शेखरे यस्य सः=चन्द्रमौलिः शिवः । रहसि=एकान्ते । उपालभ्यत=उपालब्धः, साधिक्षेपमुक्तो बभूवेत्याशयः ।

सरलार्थः—भगवन् ! मन्वादिमहर्षिभिः यदा भवान् सर्वव्यापी कथितः तदाऽनुरागिणं मद्रूपं कथं नावगच्छसि ? इत्थं मूढया पार्वत्या स्वकरचित्रितश्चन्द्रमौलिः एकान्ते साधिक्षेपमुक्तः ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिन्दी–हे भगवन् ! मनु आदि विद्वानों ने जब आपको सर्वव्यापी बताया है तो फिर अनुरागी मेरे रूप को आप क्यों नहीं जानते ? इस प्रकार मुग्धा पार्वती ने अपने हाथ से चित्रित शिवजी को एकान्त में उलाहना दिया ॥५८॥

यदा च तस्याधिगमे जगत्पतेरपश्यदन्यं न विधिं विचिन्वती ।
तदा सहास्माभिरनुज्ञया गुरोरियं प्रपन्ना तपसे तपोवनम् ॥५९॥

अन्वयः—जगत्पतेः तस्य अधिगमे विचिन्वती अन्यं विधिं यदा न अपश्यत्, तदा इयं गुरोः अनुज्ञया अस्माभिः सह तपोवनं तपसे प्रपन्ना ।

व्याख्या—यदेति । जगत्पतेः–जगतां पतिः जगत्पतिस्तस्य=जगदीश्वरस्य । तस्य=शिवस्य । अधिगमे=प्राप्तौ । विचिन्वती=मृग्यमाणा । अन्यम्=अपरम् । विधिम्=उपायम् । यदा=यावत् । न अपश्यत्=नावलोकयत् । तदा=तावत्कालम् । इयम्=एषा पार्वती । गुरोः=पितुः हिमवतः । अनुज्ञया=आज्ञया । अस्माभिः=सखीभिः । सह=साकम् । तपोवनम्–तपसः वनम्=तपोऽरण्यम् ('अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्' इत्यमरः) । तपसे=तपस्यायै प्रपन्ना=समुपस्थिता जाता ।

सरलार्थः—इयं मे सखी पार्वती जगदीश्वरं शिवं प्राप्तुमपरमुपायं नावलोकितवती तदा एषा पितुराज्ञया अस्माभिः सखीभिः सह तपस्यां कर्तुं तपोवनं सम्प्राप्ता ।

हिन्दी—मेरी यह सखी (पार्वती) ने भगवान् शिव को जब पाने का अन्य उपाय नहीं देखा तो वह पिता हिमालय की आज्ञा से हम लोगों (सखियों) के साथ तप करने तपोवन को आई हैं ॥ ५९ ॥

द्रुमेषु सख्या कृतजन्मसु स्वयं फलं तपः साक्षिषु दृष्टमेष्वपि ।
न च प्ररोहाभिमुखोऽपि दृश्यते मनोरथोऽस्याः शशिमौलिसंश्रयः ॥६०॥

अन्वयः—सख्या स्वयं कृतजन्मसु तपःसाक्षिषु एषु द्रुमेषु फलम् अपि दृष्टम् । अस्याः शशिमौलिसंश्रयः मनोरथः च प्ररोहाभिमुखः अपि न दृश्यते ।

व्याख्या—द्रुमेष्विति । सख्या=सहचर्या । स्वयम्=आत्मना । कृतजन्मसु–कृतं जन्म येषां ते कृतजन्मानः, तेषु कृतजन्मसु=विहितजननेषु । तपःसाक्षिषु=तपस्याद्रष्टृषु । एषु=एतेषु । द्रुमेषु=पादपेषु । फलम् अपि=प्रसवमपि । दृष्टम्=अवलोकितम् । अस्याः=पार्वत्याः । शशिमौलिसंश्रयः=शशिः मौलौ

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यस्य सः शशिमौलिस्तस्य संश्रयः=शिवप्राप्तिविषयः। मनोरथः=इच्छा च ('इच्छा कांक्षा स्पृहेहा तृड् वाञ्छा लिप्सा मनोरथः' इत्यमरः)। प्ररोहाभिमुखः-प्ररोहस्य अभिमुखः=अङ्कुरोन्मुखः अपि ('प्ररोहस्त्वङ्कुरोऽङ्कुरः' इत्यमरः)। न दृश्यते=नावलोक्यते।

सरलार्थः—मे सहचर्या पार्वत्या स्वयं बीजवपनजलप्रदानपूर्वकमारोपिताः वृक्षाः फलान्विताः जाताः, परन्तु शिवविषयकः तस्याः मनोरथस्याङ्कुरप्ररोहः अपि नाभवत्, फलस्य तु आशैव का।

हिन्दी—सखी पार्वती द्वारा स्वयं बीज बोने, जल से सींचने आदि की क्रियाओं सहित लगाये गये वृक्षों में फल भी आने लगे परन्तु इनकी शिवप्राप्ति विषयक इच्छा का अङ्कुरण तक दिखाई नहीं देता है॥ ६०॥

न वेद्मि स प्रार्थितदुर्लभः कदा सखीभिरस्रोत्तरमीक्षितामिमाम्।
तपःकृशामभ्युपपत्स्यते सखीं वृषेव सीतां तदवग्रहक्षताम्॥६१॥

अन्वयः—प्रार्थितदुर्लभः सः तपःकृशां सखीभिः अस्रोत्तरम् ईक्षिताम् इमां सखीं वृषा तदवग्रहक्षतां सीताम् इव कदा अभ्युपपत्स्यते इति न वेद्मि।

व्याख्या—न वेद्मीति। प्रार्थितदुर्लभः—दुःखेन लब्धुं शक्यः दुर्लभः; प्रार्थितश्चासौ दुर्लभः इति प्रार्थितदुर्लभः—याचितदुष्प्राप्यः। सः=शिवः। तपःकृशां=तपसः कृशा, तपःकृशा, ताम्=तपःक्षीणाम्। सखिभिः=आलिभिः। अस्रोत्तरम्-अस्राणि उत्तराणि यस्मिंस्तत्=अश्रुप्रमुखम्,ईक्षिताम्=अवलोकिताम्। इमाम्=पार्वतीम्। सखीं=सहचरीम्। वृषा=इन्द्रः। तदवग्रहक्षताम्-तस्यावग्रहः तदवग्रहः, तेन क्षता, ताम्=शक्रावग्रहपीड़िताम्। सीताम् इव=हलक्षतां भूमिमिव('वासवो वृत्रहा वृषा'। 'सीतालाङ्गलपद्धतिः'। वृष्टिवर्षं तद्विघातेऽवग्रहावग्रही समौ।' इति चाप्यमरः)। कदा=कस्मिन् काले। अभ्युपपत्स्यते=अनुकम्पयिष्यति। इति न वेद्मि=एवं न जानामि।

सरलार्थः—याचितदुष्प्राप्यः सः शिवः तपःक्षीणामालिभिः अश्रुपूर्णामवलोकयन्तीमिमां सखीं शक्रः तदवग्रहपीड़ितां हलक्षतां भूमिमिव कस्मिन् कालेऽनुकम्पयिष्यति।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिन्दी—याचना करने पर भी दुर्लभ शिव तप से क्षीण, सखियों द्वारा अश्रुपूर्ण अवलोकित यह सखी इन्द्र द्वारा उनके अवग्रह से नष्ट हुई भूमि के समान कब अनुगृहीत हो सकेगी ?—यह मैं नहीं जानती ॥६१॥

अगूढसद्भावमितीङ्गितज्ञया निवेदितो नैष्ठिकसुन्दरस्तया ।
अयीदमेवं परिहास इत्युमामपृच्छदव्यञ्जितहर्षलक्षणः ॥६२॥

अन्वयः—इङ्गितज्ञया तया इति अगूढसद्भावं निवेदितः नैष्ठिकसुन्दरः अव्यञ्जितहर्षलक्षणः सन् अयि इदम् परिहासः वा ? इति उमाम् अपृच्छत् ।

व्याख्या—अगूढेति । इङ्गितज्ञया–इङ्गितं जानातीति इङ्गितज्ञः, तया=सङ्केताभिज्ञया ('इङ्गितं हृद्गतो भावः' इति सज्जनः) । तया=सहचर्या । इति =एवम् । अगूढसद्भावम्–न गूढः अगूढः, अगूढश्चासौ सद्भावः यस्मिन् कर्मणि तत् अगूढसद्भावम्=प्रकटितसदभिप्रायं यथा । निवेदितः=कथितः । नैष्ठिक-सुन्दरः–निष्ठा अवधिर्यस्य सः नैष्ठिकः, नैष्ठिकश्चासौ सुन्दरः इति सः =ब्रह्म-चारिसौम्यः, अव्यञ्जितहर्षलक्षणः–न व्यञ्जितमव्यञ्जितं, हर्षस्य लक्षणं हर्षलक्षणम्, अव्यञ्जितहर्षलक्षणं यस्य सः=अप्रकटितप्रमोदचिह्नः सन् । अपि । एवम्=इत्थम् । इदम्=एतत् । परिहासः=केलिः ('द्रवकेलिपरीहासः' इत्यमरः । वा=अथवा । इति=एवम् । उमाम्=पार्वतीम् । अपृच्छत्=पृष्टवान् ।

सरलार्थः—पार्वत्याः हृद्गतं भावं जानन्त्या सहचर्या प्रकटितसदभिप्रायं यथा स्यात्तथा कथितः ब्रह्मचारिसौम्यः अप्रकटितप्रमोदचिह्नः सन् अपि, एत-दित्थं प्रकारमस्ति, अथवा परिहासोऽयम् इति पार्वतीं पृष्टवान् ।

हिन्दी—पार्वती के मनोगत भाव जानती हुई सखी के द्वारा अभिप्राय प्रकट कर दिये जाने पर ब्रह्मचारी सुन्दर शिवजी ने अपनी प्रसन्नता के चिह्नों को छिपाते हुए 'क्या यह ऐसा ही है, अथवा परिहास कर रही है ?' ऐसा पार्वती से पूछा ।

टिप्पणी—नैष्ठिकब्रह्मचारी–सदैव गुरु के सन्निकट रहने वाला ब्रह्मचारी ही नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहलाता है, जैसा कि महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने कहा है—

'नैष्ठिको ब्रह्मचारी तु वसेदाचार्यसन्निधौ । तदभावेऽस्य तनये पत्न्यां वैश्वानरेऽपि वा ॥' (या० १-४-४९) ॥६२॥

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथाग्रहस्ते मुकुलीकृताङ्गुलौ समर्पयन्ती स्फटिकाक्षमालिकाम् ।
कथञ्चिदद्रेस्तनया मिताक्षरं चिरव्यवस्थापितवागभाषत ॥६३॥

अन्वयः—अथ मुकुलीकृताङ्गुलौ अग्रहस्ते स्फटिकाक्षमालिकां समर्पयन्ती चिरव्यवस्थापितवाक् अद्रेः तनया मिताक्षरम् कथञ्चित् अभाषत ।

व्याख्या—अथेति । अथ=अनन्तरम् । मुकुलीकृताङ्गुलौ-अमुकुलो मुकुलः यथा सम्पद्यन्ते तथाकृताः इति मुकुलीकृताः, मुकुलीकृताः अङ्गुलयः यस्मिन् सः, तस्मिन्=सम्पुटीकृताङ्गुलौ ('कुड्मलो मुकुलोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः)। अग्रहस्ते=कराग्रे । स्फटिकाक्षमालिकाम्-स्फटिकानाम् अक्षमालिका, ताम्= स्फटिकजपमालाम् ('भासुरः स्फटिकोपलः । शालिपिष्टं धौतशिलम्' इति त्रिकाण्डकोषः) । समर्पयन्ती-समर्पणं कुर्वन्ती । चिरव्यवस्थापितवाक्-चिरेण व्यवस्थापिताः चिरव्यवस्थापिताः, ताः वाचः यया सा=चिरकालसंयत-वचना । अद्रेः=गिरेः हिमालयस्य । तनया=सुता पार्वती । मिताक्षरम्-मित-मक्षरं यस्मिन् तत्=सीमितवर्णम् । कथञ्चित्=कथमपि । अभाषत=कथितवती ।

सरलार्थः—ब्रह्मचारिणः प्रश्नानन्तरं सम्पुटीकृताङ्गुलौ स्फटिकजपमालां दधती चिरसंयतवचना पार्वती परिमितवर्णं कथमपि कथितवती ।

हिन्दी—ब्रह्मचारी के प्रश्न करने के बाद हाथ के अग्रभाग में स्फटिक जपमाला को धारण करती हुई पर्याप्त समय से मौन बनी पार्वती सीमित अक्षरों से इस प्रकार कहने लगीं ॥६०॥

यथा श्रुतं वेदविदां वर ! त्वया जनोऽयमुच्चैः पदलङ्घनोत्सुकः ।
तपः किलेदं तदवाप्तिसाधनं मनोरथानामगतिर्न विद्यते ॥६४॥

अन्वयः—हे वेदविदां वर ! त्वया यथा श्रुतं तथा अयं जनः उच्चैः पद-लङ्घनोत्सुकः अस्ति । इदं तपः तदवाप्तिसाधनं किल, मनोरथानाम् अगतिः न विद्यते ।

व्याख्या—यथेति । हे वेदविदां वर=वेदज्ञश्रेष्ठ ! त्वया=भवता । यथा-श्रुतं=यद्विधमाकर्णितम् । तथा=तादृशः । अयम्=एषः । जनः=मद्विधः जनः; अहमिति । उच्चैः पदलंघनोत्सुकः=उच्चैश्च तत्पदमुच्चैःपदम्, तस्य लंघनम्, तस्मिन् उत्सुकः=उच्चपदाक्रमणोत्सुकः अस्ति । इदम्=एतत् । तपः=तपस्या ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तदवाप्तिसाधनं-तस्यावाप्तिस्तस्याः साधनम्, तत्=शिवप्राप्त्युपकरणम् । किल =खलु । मनोरथानाम्=कामानाम् ('इच्छा काञ्छा स्पृहेहा तृड् वाञ्छा लिप्सा मनोरथः' इत्यमरः) । अगतिः-न गतिरगतिः=अविषयः । न विद्यते =न वर्तते । अत्रार्थान्तरन्यासोऽलंकारः ।

सरलार्थः—हे वेदज्ञश्रेष्ठ ! भवता यत्प्रकारं श्रुतं तथैव मद्विधः जनः उच्चपदाक्रमणोत्सुकः अस्ति । तपस्या तत्प्राप्तिहेतुः खलु । कामानामविषयो न वर्तते ।

हिन्दी—हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! आपने जैसा (सखी-मुख से) सुना वैसा ही सत्य है । मैं शिवजी को प्राप्त करने के लिए उत्सुक हूँ । तपस्या तो शिव प्राप्ति का साधन है । वास्तव में मनोरथों से अछूता कोई है ही नहीं ॥६४॥

अथाह वर्णी विदितो महेश्वरस्तवदर्थिनी त्वं पुनरेव वर्तते ।
अमङ्गलाभ्यासरतिं विचिन्त्य तं तवानुवृत्तिं न च कर्तुमुत्सहे ॥ ६५ ॥

अन्वयः—अथ वर्णी आह-महेश्वरः विदितः, पुनः त्वं तदर्थिनी एव वर्तते । अमङ्गलाभ्यासरतिं तं विचिन्त्य तव अनुवृत्तिं कर्तुं न उत्सहे ।

व्याख्या—अथेति । अथ=अनन्तरम् । वर्णी=ब्रह्मचारी । आह=उवाच । महेश्वरः-महांश्चासौ ईश्वरः महेश्वरः=शिवः । विदितः=ख्यातः । पुनः= भूयः त्वम्=भवती । तदर्थिनी-तस्य अर्थिनी=प्राप्तुकामा । एव । वर्तसे= विद्यसे । अमङ्गलाभ्यासरतिं-न मङ्गलममङ्गलम्=चिताभस्मादिकम्, तस्याभ्यासः=अनुलेपनप्रयासः, तस्मिन् रतिः=अनुरक्तिस्तम् । तम्=तादृशं शिवम् । विचिन्त्य=विचार्य । तव=ते । अनुवृत्तिम्=अनुसरणम् । कर्तुम्=विधातुम् । न उत्सहे=नानुमन्तुं शक्नोमि ।

सरलार्थः—तदनन्तरं ब्रह्मचारिणोक्तम्-अहं महेश्वरं वेद्मि येन त्वं प्रथमं भग्नमनोरथा कृता । तमेव त्वं पुनः कामयसे । चिताभस्माद्यनुलेपनानुरागिणं तं शिवं विचार्य तव चित्तवृत्तिमनुसर्तुं न शक्नोमीति ।

हिन्दी—पार्वती के कथनोपरान्त ब्रह्मचारी बोले-मैं शिवजी को जानता हूँ जिन्होंने तुम्हारा मनोरथ पहले ही भग्न कर दिया, तुम फिर भी उन्हीं को चाहती हो । चिताभस्मादि को लगाने के अनुरागी उन शिवजी को सोचकर तुम्हारी चित्तवृत्ति का अनुसरण करने में मैं असमर्थ हूँ ॥ ६५ ॥

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अवस्तुनिर्बन्धपरे ! कथं नु ते करोऽयमामुक्तविवाहकौतुकः ।
करेण शम्भोर्वलयीकृताहिना सहिष्यते तत्प्रथमावलम्बनम् ॥ ६६ ॥

अन्वयः—अवस्तुनिर्बन्धपरे ! आमुक्तविवाहकौतुकः अयं ते करः वलयीकृताहिना शम्भोः करेण तत्प्रथमावलम्बनं कथं नु सहिष्यते ।

व्याख्या—अवस्त्विति । अवस्तुनिर्बन्धपरे–अवस्तुनि निर्बन्धः, सः परं यस्याः सा तत्संबुद्धौ=हे तुच्छवस्तुहठतत्परे ! आमुक्तविवाहकौतुकः–विवाहे कौतुकं विवाहकौतुकम्, तदामुक्तं यस्य सः आमुक्तविवाहकौतुकः=आसञ्जितपरिणयमङ्गलसूत्रः । अयम्=एषः । ते=तव । करः=हस्तः । वलयीकृताहिना—न वलयः अवलयः, अवलयः वलयः सम्पद्यमानः वलयीकृतः, वलयीकृतः अहिः यस्मिन् सः, तेन=आभूषणीकृतसर्पेण । 'आवापकः पारिहार्यः कटको वलयोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः) । शम्भोः=शङ्करस्य । करेण=हस्तेन । तत्प्रथमावलम्बनं—तदेव प्रथमं तत्प्रथमं तदवलम्बनं तत्=तत्प्रथमग्रहणम् । कथं नु सहिष्यते=केन प्रकारेण सहनं करिष्यति ।

सरलार्थः—हे निःसारवस्त्वनुरागिणी ! परिणयमङ्गलसूत्रभूषितस्ते पाणिः सर्पभूषणयुक्तस्य शिवस्य पाणिनः स्पर्शं पाणिपीड़नकाले केन प्रकारेण सहनं करिष्यति ।

हिन्दी—हे सारहीन वस्तु में अनुराग करने वाली पार्वती ! विवाह के मंगल सूत्र से विभूषित तुम्हारा यह हाथ सर्पों के भूषण से युक्त शिवजी के हाथ के स्पर्श को विवाह के समय कैसे सहन कर सकेगा ॥ ६६ ॥

त्वमेव तावत्परिचिन्तय स्वयं कदाचिदेते यदि योगमर्हतः ।
वधूदुकूलं कलहंसलक्षणं गजाजिनं शोणितबिन्दुवर्षि च ॥ ६७ ॥

अन्वयः—(हे गौरि !) त्वम् एव स्वयं तावद् परिचिन्तय, कलहंसलक्षणं वधूदुकूलं तथा शोणितबिन्दुवर्षि गजाजिनं च एते । कदाचित् योगम् अर्हतः यदि ?

व्याख्या—त्वमिति ! हे गौरि ! त्वम्=भवती एव । तावत्=तावत्कालम् स्वयम्=आत्मना । परिचिन्तय=विचारय । कलहंसलक्षणं-कलहंसलक्ष्ममिव लक्षणं यस्य तत्=कलहंसचिह्नम्' ('चिह्नं लक्ष्म च लक्षणम्' इत्यमरः) । वधूदुकूलम्–

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वध्वाः दुकूलं वधूदुकूलं तत् = नवोढाक्षौमम् ('वधू स्नुषा नवोढास्त्री' इति विश्वः, ('क्षौमं दुकूलम्' इत्यमरः)। तथा = तादृशम् । शोणितबिन्दुवर्षि = शोणितस्य बिन्दवः शोणितबिन्दवः, तान् वर्षतीति = रक्तबिन्दुवर्षि । गजाजिनं — गजस्य = करिणः अजिनं = चर्म यस्य सः तम् = शिवम् । कदाचित् = कदापि । योगम् = उपयुक्तताम् । अर्हतः यदि = नैवार्हतः स्तः । अत्र विषमालङ्कारः ।

सरलार्थ—हे पार्वति ! तावत्त्वमेव स्वयं विचारय यत्कलहंसचिह्नं नवोढाक्षामं, तादृशं रक्तबिन्दुवर्षि करिचर्म च कदापि संगतिं न लभेते ।

हिन्दी—हे पार्वति ! तुम स्वयं विचार कर लो कि कलहंस-चिह्नित नवोढा का रेशमी वस्त्र तथा शिव जी के रक्तबिन्दु वर्षाने (टपकाने) वाले गजचर्म के साथ सम्बन्ध कैसे हो सकता है ।।६७।।

चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः परोऽपि का नाम तवानुमन्यते ।
अलक्तकाङ्कानि पदानि पादयोर्विकीर्णकेशासु परेतभूमिषु ।।६८।।

अन्वयः—चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः तव पादयोः अलक्तकाङ्कानि पदानि विकीर्णकेशासु परेतभूमिषु परः अपि कः नाम अनुमन्यते ।

व्याख्या—चतुष्केति । चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः = पुष्पाणां प्रकरः पुष्पप्रकरः, चतुष्के पुष्पप्रकरः चतुष्कपुष्पप्रकरः, तस्मिन् अवकीर्णौ, तयोः = चतुष्ककुसुमसमूहव्याप्तयोः । तव = ते । पादयोः = चरणयोः । अलक्तकाङ्कानि — अलक्तकस्य = लाक्षारसस्य ('महावरकं' इति भाषायाम्) अङ्कानि = रञ्जितानि येषु तानि ('अलक्तकाङ्कौ लांछनं च चिह्नं लक्ष्म च लक्षणम्' इत्यमरः) । पदानि = चरणन्यासचिह्नानि । ('पदं शब्दे च वाक्ये च व्यवसायापदेशयोः । पादतच्चिह्नयोरिति' इत्यमरः) । विकीर्णकेशासु—विकीर्णाः केशाः यासु ताः, तासु = विक्षिप्तकचासु ('चिकुरः कुन्तलो बालः कचः केशः शिरोरुहः' इत्यमरः) । परेतभूमिषु—परेतानां भूमयः परेतभूमयस्तासु = श्मशानेषु । परः = अन्यः अपि को नाम अनुमन्यते = कः जनः अनुमतिं ददाति ।

सरलार्थः—पुष्पाच्छादितभूसञ्चारयोग्ययोः तवातिकोमलचरणयोः लाक्षारससिक्तानि पदचिह्नानि विक्षिप्तकुन्तलासु श्मशानभूमिषु धतुं शत्रुरपि अनुमतिं न ददाति ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिन्दी—पुष्पों से आच्छादित पृथ्वी पर सञ्चरण (चलने) योग्य तुम्हारे अति कोमल चरणों को महावर लगे पदचिह्न बिखरे बालों वाली श्मशानभूमि पर रखने की अनुमति शत्रु भी नहीं दे सकता है ॥६८॥

अयुक्तरूपं किमतः परं वद त्रिनेत्रवक्षः सुलभं तवापि यत् ।
स्तनद्वयेऽस्मिन् हरिचन्दनास्पदे पदं चिताभस्मरजः करिष्यति ॥६९॥

अन्वयः—त्रिनेत्रवक्षः तव सुलभम् अपि, अतः परम् अयुक्तरूपं किम् ? वद, यत् हरिचन्दनास्पदे अस्मिन् स्तनद्वये चिताभस्मरजः पदं करिष्यति ।

व्याख्या—अयुक्तरूपमिति । त्रिनेत्रवक्षः=त्रीणि नेत्राणि यस्य सः त्रिनेत्रस्तस्य वक्षः=शिववक्षःस्थलम्, शिवालिङ्गनमिति । तव=पार्वत्याः । सुलभम्=सुप्राप्यम् भवति अपि । अतः परम्=अस्माद् अन्यत् । अयुक्तरूपं–न युक्तमयुक्तम्, अतिशयेनायुक्तमित्ययुक्तरूपम्=अनुपयुक्तम् किम् स्याद् ? वद= कथय । यत्=हि । हरिचन्दनाऽऽस्पदे-हरिचन्दनस्य आस्पदम्, तस्मिन्=हरिचन्दनचर्चिते । अस्मिन्=एतस्मिन्, तव । स्तनद्वये=स्तनयोः द्वयमिति तस्मिन्= पयोधरयुग्मे । चिताभस्मरजः–चितायाः भस्म चिताभस्म, तस्य रजः, तत्= श्मशानभस्मरेणुः ('भूतिर्भसितभस्मनि' इत्यमरः) । पदं=स्थानम् करिष्यति= विधास्यति ।

सरलार्थ—हे पार्वति ! हरिचन्दनचर्चिते तव कुचयुग्मे श्मशानभस्मरेणुः शिवालिङ्गनं स्थानं करिष्यति, कथय अस्माद् अन्यत् किं ते अनुपयुक्तम् ।

हिन्दी—हे पार्वति; त्रिनेत्र शिव के वक्षःस्थल का आलिंगन तुम्हें सुलभ हो भी, परन्तु बतलाओ कि हरिचन्दनचर्चित इस स्तनयुगल पर चिताभस्मरेणु लगेगी, तो इससे बढ़कर और अनुपयुक्त रूप क्या होगा ? ॥६९॥

इयं च तेऽन्या पुरतो विडम्बना यदूढया वारणराजहार्यया ।
विलोक्य वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया महाजनः स्मेरमुखो भविष्यति ॥७०॥

अन्वयः—च इयं ते पुरतः अन्या विडम्बना अस्ति । ऊढया वारणराजहार्यया त्वया अधिष्ठितं वृद्धोक्षं विलोक्य महाजनः स्मेरमुखः भविष्यति ।

व्याख्या—इयमिति । च-तथा । इयम्=एषा । ते=तव । पुरतः=अग्रतः । अन्या=अपरा । विडम्बना=परिहासः अस्ति । ऊढया=विवाहितया ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वारणराजहार्यया–वारणानां=गजानां राजा=ईशः, तेन हार्या=हारयितुं योग्या=करिराजनेतव्या ('मतङ्गजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी।' इत्यमरः) त्वया=भवत्या। अधिष्ठितम्=आरूढम्। वृद्धोक्षम्–वृद्धश्चासौ उक्षा; तम्=वृद्धवृषभम् ('उक्षा भद्रो बलीवर्दः' इत्यमरः)। विलोक्य=दृष्ट्वा। महाजनः–महांश्चासौ जनः महाजनः=सत्पुरुषः। स्मेरमुखः=विहसितवदनः। भविष्यति=उपहासं करिष्यति।

सरलार्थः–इयं तव पतिगृहप्रस्थानकाले प्रथमः परिहासो भविष्यति यत् गजेन्द्रारोहणार्हां त्वां वृद्धवृषोपरि आरुह्य गच्छन्तीं दृष्ट्वा साधुजनः विस्मिताननो भविष्यति।

हिन्दी–पति के घर जाते समय यह तुम्हारी प्रथम मजाक बनेगी कि उत्तम हाथी पर बैठने योग्य तुम्हें शिवजी के बूढ़े नादिये पर बैठ कर जाती देख साधुजन मुस्करायेंगे ॥ ७० ॥

द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां समागमप्रार्थनया पिनाकिनः।
कला च सा कान्तिमती कलावतस्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी ॥७१॥

अन्वयः–पिनाकिनः समागमप्रार्थनया सम्प्रति द्वयं शोचनीयतां गतम्; सा कान्तिमती कलावतः कला, अस्य लोकस्य नेत्रकौमुदी त्वं च।

व्याख्या–द्वयमिति। पिनाकिनः–पिनाकमस्यास्तीति पिनाकी; तस्य=धनुर्धारिणः शिवस्य। समागमप्रार्थनया–समागमस्य प्रार्थना, तया=सम्प्राप्तियाचनया। सम्प्रति=साम्प्रतम्। द्वयम्=उभयम्। शोचनीयताम्–शोचनीयस्य भावः शोचनीयता, ताम्=शोचनीयावस्थाम्। गतम्=प्राप्तम्। सा=असौ। कान्तिमती–प्रशस्ता कान्तिर्यस्याः सा कान्तिमती=प्रभावती। कलावतः=कलायुक्तस्य चन्द्रस्य। कला=षोडशो भागः ('कला तु षोडशो भागः' इत्यमरः)। अस्य=एतस्य। लोकस्य=संसारस्य। नेत्रकौमुदी–कौ=पृथिव्यां मोदते इति कुमुदस्तस्येयं कौमुदी, नेत्रयोः कौमुदी इति सा=लोचनचन्द्रिका ('चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना' इत्यमरः)। त्वम्=भवती च।

सरलार्थः–शिवप्राप्तिकामनयाऽद्य वस्तुद्वयं शोचनीयतां प्राप्तम्। प्रथमं तावत् चन्द्रस्य दीप्तिमती कला, अस्य संसारस्य च लोचनचन्द्रिका त्वमिति।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिन्दी— शिवजी को पाने की प्रार्थना से आज चन्द्रमा की कान्तिमती कला तथा इस संसार की लोचन-चन्द्रिका तुम दोनों ही शोचनीय दशा को प्राप्त हो गई हो ॥ ७१ ॥

वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु ।
वरेषु यत् बालमृगाक्षि! मृग्यते तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने ॥७२॥

अन्वयः—वपुः विरूपाक्षम् अलक्ष्यजन्मता, वसु दिगम्बरत्वेन निवेदितम् । हे बालमृगाक्षि ! वरेषु यत् मृग्यते तत् त्रिलोचने व्यस्तम् अपि अस्ति किम् ।

व्याख्या—वपुरिति । वपुः=शरीरम् । विरूपाक्षम्-विकृतं रूपं येषां तानि विरूपाणि तानि अक्षीणि यस्य सः विरूपाक्षः, तम्=विकृतरूपम् । अलक्ष्यजन्मता-लक्षितुं योग्यं लक्ष्यं, न लक्ष्यमलक्ष्यं जन्म यस्य स अलक्ष्यजन्मा, तस्य भावः अलक्ष्यजन्मता=अज्ञातजन्मत्वम् । वसु=धनम् । दिगम्बरत्वेन-दिगेवाम्बरं यस्य सः दिगम्बरः, तस्य भावो दिगम्बरत्वं, तेन=नग्नत्वेन । निवेदितम्=ज्ञातम् । हे बालमृगाक्षि=हे मृगशावकनयने ! वरेषु=वरजनेषु । यत् मृग्यते=अन्विष्यते तत् । त्रिलोचने-त्रीणि लोचनानि यस्य सः तस्मिन्=शिवे । व्यस्तम् एकम्, अपि अस्ति किम्=नास्तीति ।

सरलार्थः—शिवस्य विकृतं शरीरं, जन्म अज्ञातम्, धनं च नग्नत्वमस्ति । हे कुरङ्गशावकनयने ! वरेषु ये गुणाः अन्विष्यन्ते, शिवे तेषु नैकोऽपि विद्यते ।

हिन्दी—हे मृगशावकनेत्रे ! शिवजी का रूप विकृत, जन्म अज्ञात तथा धन नग्न रहना है । वर में जो गुण ढूंढ़े जाने चाहिए उनमें से एक भी तो शिवजी में नहीं है ।

टिप्पणी—वर में अन्वेषणीय गुण शास्त्र में निम्न प्रकार कहे गये हैं—

कन्या कामयते रूपं माता वित्तं पिता श्रुतम् ।
बान्धवाः कुलमिच्छन्ति मिष्ठान्नमितरे जनाः ॥

निवर्तयास्मादसदीप्सितान्मनः क्व तद्विधस्त्वं क्व च पुण्यलक्षणा ।
अपेक्ष्यते साधुजनेन वैदिकी श्मशानशूलस्य न यूपसत्क्रिया ॥७३॥

अन्वयः—अस्मात् असदीप्सितात् मनः निवर्तय । तद्विधः क्व पुण्यलक्षणा त्वं च क्व साधुजनेन श्मशानशूलस्य वैदिकी यूपसत्क्रिया न अपेक्षते ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याख्या—निवर्तयेति । अस्मात्=एतस्मात् । असदीप्सितात्-न सत् असत्, तच्च तत् ईप्सितम् असदीप्सितम्, तस्मात्=अनिष्टकामनायाः । मनः= चेतः । निवर्तय=निरोधय । तद्विधः=तथाविधः जनः शिवः । क्व=कुत्र । पुण्य-लक्षणा-पुण्यानि लक्षणानि यस्याः सा=शुभचिह्नयुक्ता । त्वम्=भवती च । क्व= कुत्र । साधुजनेन-साधुश्चासौ जनः साधुजनस्तेन=सत्पुरुषेण । श्मशानशूलस्य-श्मशानस्य शूलं श्मशानशूलं, तस्य=पितृवनशूलस्य । वैदिकी=वेदोक्ता । यूप-सत्क्रिया-सती चासौ क्रिया सत्क्रिया, यूपस्य सत्क्रिया यूपसत्क्रिया=पशु-बन्धनभूतः शुद्धः दारुविशेषः । न अपेक्षते=नेष्यते ।

सरलार्थः—हे पार्वति ! अतः शिवप्राप्त्यभीप्सिताच्चेतः परावर्तय । बहु-दोषयुक्तः शिवः क्व, शुभलक्षणोपेता त्वं च क्व ? उभयोः महदन्तरं वर्तते । यथा वेदोक्तं यूपदारु श्मशानदारुवद् भवितुं नार्हति तथैव त्वमपि शिवेन सह परिणयायानर्हाऽसि ।

हिन्दी—हे पार्वती ! अतः शिवजी को पाने की अभिलाषा से मन हटा लो । अनेक दोषों से युक्त शिव और शुभ लक्षणों वाली तुम में अत्यन्त अस-मानता है, अतः शिवजी से तुम्हारा विवाह करना ठीक नहीं है ।।७३।।

इति द्विजातौ प्रतिकूलवादिनि प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया ।
विकुञ्चितभ्रूलतमाहिते तया विलोचने तिर्यगुपान्तलोहिते ।।७४।।

अन्वयः—इति द्विजातौ प्रतिकूलवादिनि सति प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया तया उपान्तलोहिते विलोचने विकुञ्चितभ्रूलतं यथा तथा तिर्यक् आहिते ।

व्याख्या—इति द्विजाताविति । इति=एवम् । द्विजातौ-द्वे जाती यस्य सः, तस्मिन्=ब्राह्मणे । प्रतिकूलवादिनि-प्रतिकूलं=विपरीतं वदति=भणति इति सः, तस्मिन् । सति । प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया-प्रवेपते इहि प्रवेपमानःस चासौ अधरश्चेति प्रवेपमानाधरः, लक्ष्यः कोपो यस्याः सा लक्ष्यकोपा, प्रवेप-मानाधरेण लक्ष्यकोपा, सा तया=कम्पमानोष्ठलक्ष्यक्रोधया । तया=पार्वत्या ('कोपक्रोधामर्षरोषप्रतिघारुट् क्रुधौ स्त्रियौ' इत्यमरः) उपान्तलोहिते—

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपान्तयोः लोहिते उपान्तलोहते=अपाङ्गारुणे। विलोचने=नयने। विकुञ्चित-भ्रूलतं-भ्रुवौ एव लते भ्रूलते, विकुञ्चिते भ्रूलते यस्मिन्, तत्=कुटिलितभ्रूलतम्। यथा स्यात् तथा तिर्यक्=वक्रम्। आहिते=निहिते।

सरलार्थः—इत्थं विप्रे ब्रह्मचारिणि विपरीतं कथयति सति कम्पमानोष्ठानुमेयक्रोधया तया पार्वत्या अपाङ्गारुणे नयने कुटिलितभ्रूलतं यथा तथा निहिते।

हिन्दी—इस प्रकार ब्राह्मण ब्रह्मचारी के कहने पर काँपते हुए ओठों के कारण क्रुद्ध दिखलाई पड़ रही उस पार्वती ने, जिसकी आँखों के छोर क्रोध से लाल हो गये थे, भ्रूलताओं को टेढ़ी करते हुए उसकी ओर तिरछे होकर देखा।

टिप्पणी – **द्विजाति**—ब्राह्मण की जाति जन्म तथा संस्कार दो विधियों से मानी जाती है–जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते ॥७४॥

उवाच चैनं परमार्थतो हरं न वेत्सि नूनं यत एवमात्थ त्वम्।
अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् ॥७५॥

अन्वयः—अथ एनम् उवाच, त्वं परमार्थतः हरं न वेत्सि, नूनं, यतः माम् एवम् आत्थ। मन्दाः अलोकसामान्यम् अचिन्त्यहेतुकम् महात्मनां चरितं द्विषन्ति।

व्याख्या–अथ=अनन्तरम्। एनम्=ब्रह्मचारिणम्। उवाच=प्राह। त्वम्=भवान्। परमार्थतः–परमश्चासौ अर्थः परमार्थः, तस्मात्=तत्त्वतः। हरं=शम्भुम्। न वेत्सि=न जानासि। नूनम्=किल। यतः=यस्मात् माम्=पार्वतीम्। एवम्=इत्थम्। आत्थ=कथयसि। मन्दाः=मूढाः ('मूढाऽल्पाऽपटुनिर्भाग्या मन्दाः' इत्यमरः)। अलोकसामान्यम्–लोकेषु सामान्यं लोकसामान्यम्, न लोकसामान्यमित्यलोकसामान्यम्, तत्=जनसाधारणभिन्नम् ('लोकस्तु भुवने जने' इत्यमरः)। अचिन्त्यहेतुकम्—चिन्तयितुं शक्यः चिन्त्यः, न चिन्त्यः अचिन्त्यः, स हेतुर्यस्य तत् अचिन्त्यहेतुकम्=दुर्बोधकारणकम् ('हेतुर्ना कारणं बीजम्' इत्यमरः)। महात्मनाम्–महान्तश्चात्मानः येषां ते, तेषाम्=महापुरुषाणाम्। चरितम्=चरित्रम्। द्विषन्ति=दूषयन्ति। अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः।

सरलार्थः—अथ पार्वती ब्रह्मचारिणमुवाच—भवान् तत्त्वतः शिवं न

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जानाति, अतः एवं मां कथयसि । मूढ़ाः असाधारणं दुर्बोधहेतुकञ्च सतां चरितं दूषयन्ति ।

हिन्दी—अनन्तर पार्वती ब्रह्मचारी से कहने लगीं कि आप वास्तव में शिवजी को तत्त्वरूप से नहीं पहचानते हो, इसीलिए मुझसे ऐसा कह रहे हो । मूर्खजन असाधारण तथा दुर्बोधहेतुक सज्जनों के चरित्र को दोष देते हैं ॥७५॥

विपत्प्रतीकारपरेण मङ्गलं निषेव्यते भूतिसमुत्सुकेन वा ।
जगच्छरण्यस्य निराशिषः सतः किमेभिराशोपहतात्मवृत्तिभिः ॥७६॥

अन्वयः—विपत्प्रतीकारपरेण भूतिसमुत्सुकेन वा मङ्गलं निषेव्यते । जगच्छरण्यस्य निराशिषः सतः आशोपहतात्मवृत्तिभिः एभिः किम् प्रयोजनम् ।

व्याख्या—विपदिति । विपत्प्रतीकारपरेण–विपदः प्रतीकारः विपत्प्रतीकारः, तेन=विपत्तिपरिहारार्थिना ('विपत्यां विपदापदौ' इत्यमरः) । भूतिसमुत्सुकेन–भूतौ=ऐश्वर्ये समुत्सुकः=उत्कण्ठितः यः सः, तेन । वा=अथवा । मंगलम्=कल्याणम् । निषेव्यते=सेव्यते । जगच्छरण्यस्य–शरणं गतः शरण्यः, जगतां शरण्य इति, तस्य=विश्वशरणसाधोः । निराशिषः—निर्गता आशीर्यस्मात् स निराशीस्तस्य=निरभिलाषिणः हरस्य सतः ('आशीरुरगदष्ट्रायां विप्रवाक्याभिलाषयोः' इति शाश्वतः) । आशोपहतात्मवृत्तिभिः—आशया उपहता, आशोपहता, आत्मनो वृत्तिरात्मवृत्तिः, आशोपहता आत्मवृत्तिर्येषान्ताभिः=तृष्णादूषितचेतोवृत्तिभिः एभिः=एतैर्मङ्गलैः । किं प्रयोजनम्=कः अर्थः, नास्ति किमपि प्रयोजनमित्यर्थः ।

सरलार्थः—अनर्थपरम्परापनेतुमिच्छया ऐश्वर्यकामनया च नरः गन्धमाल्यादिमांगलिकवस्तूनि सेवते । किञ्च विश्वशरण्यस्य शिवस्य चेतोवृत्तिदूषकानां मांगलिकवस्तूनां सेवनेन कोऽपि लाभः नास्ति ।

हिन्दी—अमङ्गल को दूर करने की इच्छा से तथा ऐश्वर्य कामना से मनुष्य गन्धमाल्यादि मांगलिक वस्तुओं का सेवन करता है किन्तु त्रिभुवन के रक्षक शिवजी की चित्तवृत्ति दूषित करने वाली मांगलिक वस्तुओं के सेवन करने से क्या प्रयोजन है ? ॥७६॥

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदां त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः ।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः ॥७७॥

अन्वयः—सः अकिञ्चनः सन् सम्पदां प्रभवः पितृसद्मगोचरः (सन्) त्रिलोकनाथः, भीमरूपः (सन्) शिवः इति उदीर्यते । पिनाकिनः याथार्थ्यविदः न सन्ति ।

व्याख्या—अकिञ्चन इति । सः = असौ हरः । अकिञ्चनः-नास्ति किञ्चन यस्य सः अकिञ्चनः = दरिद्रः सन् । सम्पदां = सम्पत्तीनाम् ('अथ सम्पदि । सम्पत्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्च' इत्यमरः) । प्रभवः = कारणम् । पितृसद्मगोचरः-पितॄणां सद्म पितृसद्म, तद् गोचरः यस्य सः = श्मशानगोचरः सन् । त्रिलोकनाथः-त्रयाणां लोकानां नाथः त्रिलोकनाथः = त्रिभुवनेश्वरः । भीमरूपः-भीमं रूपं यस्य सः = भीषणाकृतिः सन् ('दारुणं भीषणं भीष्मं भीमं घोरं भयानकम्' इत्यमरः) । शिवः = कल्याणकरः । इति उदीर्यते = उच्यते । पिनाकिनः = हरस्य । याथार्थविदः-यथार्थस्य भावः याथार्थ्यम्, तद्विदन्तीति ते = तत्त्ववेत्तारः । न सन्ति = नैव वर्तन्ते ।

सरलार्थः—हरः दरिद्रः सन् विभवकारणम् श्मशानाश्रयः सन् त्रिभुवनेश्वरः, भयङ्कररूपः सन् कल्याणकरः उच्यते, तस्य तत्त्ववेत्तारः न विद्यन्ते ।

हिन्दी—वह अकिञ्चन (दरिद्र) होते हुए भी वैभव के हेतु हैं, श्मशानवासी होते हुए भी तीनों लोकों के स्वामी हैं, भयङ्कररूप वाले होकर भी शिव (कल्याणकारी) हैं । पिनाकी के तत्त्व को जानने वाले नहीं हैं ॥७७॥

विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा ।
कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखरं न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपुः ॥७८॥

अन्वयः—विश्वमूर्तेः वपुः विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा, गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा, कपालि वा अथवा इन्दुशेखरं स्यात् इति न अवधार्यते ।

व्याख्या—विभूषणोद्भासीति । विश्वमूर्तेः-विश्वम् = जगत् मूर्तिः = रूपं यस्य सः तस्य = जगद्रूपस्य हरस्य । वपुः = शरीरम् । विभूषणोद्भासि-विभूषणैः = अलङ्कारैः उद्भासते = दीप्यते तच्छीलमिति = आभूषणकान्तम् । पिनद्धभोगि-भोगोऽस्यास्तीति भोगी, पिनद्धाः भोगिनः यस्मिन्, तत् = बद्धना-

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गम् वा ('उरगः पन्नगः भोगी जिह्मगः पवनाशनः' इत्यमरः)। गजाजिनालम्बि–गजस्य अजिनं गजाजिनम्=हस्तिचर्म, तदवलम्बते, तच्छीलं गजाजिनालम्बि=करिचर्मावलम्बि। दुकूलधारि वा=कपालयुक्तं वा। ('स्यात् कर्परः कपालोऽस्त्री' इत्यमरः)। अथवा इन्दुशेखरः–इन्दुः=चन्द्रः शेखरे=मौलौ यस्य तत्=चन्द्रमुकुटम्, स्यात्=भवेत्। इति=एवम्। नावधार्यते=नैव निश्चयः क्रियते।

सरलार्थः—त्रैलोक्यात्मकस्य शिवस्य शरीरं भूषणकान्तमथवा बद्धसर्पि, करिचर्मावलम्बि अथवा क्षौमधारकं, कपालयुक्तं वा चन्द्रमुकुटं भवेत्, इत्थं निश्चयो न क्रियते।

हिन्दी—विश्वमूर्त्ति शिवजी का शरीर आभूषणों से दीप्तिमान् हो या साँपों से लिपटा हुआ, चाहे हाथी का चर्म उनका वस्त्र हो अथवा रेशमी परिधान, कपाल (खप्पर) युक्त हो अथवा चन्द्रमौलि हो—यह निश्चय नहीं किया जा सकता है ।।७८।।

तदङ्गसंसर्गमवाप्य कल्पते ध्रुवं चिताभस्मरजो विशुद्धये।
तथा हि नृत्याभिनयक्रियाच्युतं विलिप्यते मौलिभिरम्बरौकसाम् ।।७९।।

अन्वयः—तदङ्गसंसर्गम् अवाप्य चिताभस्मरजः विशुद्धये कल्पते ध्रुवम्; तथा हि नृत्याभिनयक्रियाच्युतं तत् अम्बरौकसां मौलिभिः विलिप्यते।

व्याख्या—तदिति। तदङ्गसंसर्गम्–तस्याङ्गम् तदङ्गं, तस्य संसर्गस्तम्=शिवशरीरसम्पर्कम्। अवाप्य=प्राप्य। चिताभस्मरजः—चितायाः भस्म, तदेव रजस्तत्=चितिभूतिरेणुः। विशुद्धये=पवित्रतायै। कल्पते=भवति। ध्रुवम्=निश्चितम्। तथा हि=यतो हि। नृत्याभिनयक्रियाच्युतं–नृत्येऽभिनयः नृत्याऽभिनयः, स एव क्रिया, तया च्युतम् तत्=ताण्डवाभिनयकर्मपतितम् तत् अम्बरौकसाम्=अम्बरमेव ओकः येषां ते, तेषाम्=द्युलोकवासिनाममराणाम् ('ताण्डवं नटनं नाट्यं लास्यं नृत्यं च नर्तने' इत्यमरः)। मौलिभिः=उत्तमाङ्गैः। विलिप्यते=लेपनं क्रियते।

सरलार्थः—चिताभस्मरेणुरपि शिवशरीरसम्पर्कात् नूनमेव पवित्रतामेति। एतदेव कारणं यत्तद् भस्म दिवौकसां शिरोभिः ध्रियते।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिन्दी—चिताभस्मरज भी शिवजी के शरीर का संसर्ग पाकर शुद्ध हो जाती है, इसीलिए उस भस्म को देवता भी शिर पर धारण करते हैं ॥७९॥

असम्पदस्तस्य वृषेण गच्छतः प्रभिन्नदिग्वारणवाहनो वृषा ।
करोति पादावुपगम्य मौलिना विनिद्रमन्दाररजोऽरुणाङ्गुली ॥८०॥

अन्वयः—प्रभिन्नदिग्वारणवाहनः वृषा । असंपदः वृषेण गच्छतः तस्य पादौ मौलिना उपगम्य विनिद्रमन्दाररजोऽरुणाऽङ्गुली करोति ।

व्याख्या—असम्पद इति । प्रभिन्नदिग्वारणवाहनः-प्रकर्षेण भिन्नः प्रभिन्नः, दिशः वारणः दिग्वारणः, प्रभिन्न दिग्वारणः वा रूपं यस्य सः=मदस्राविदिग्गजयानः ऐरावतः । वृषा=शक्रेण । असंपदः=संपत्तिहीनस्य । वृषेण=नन्दिना । गच्छतः=यातस्य वृषारूढस्य । तस्य=शिवस्य । पादौ=चरणौ । मौलिना=शिरसा । उपगम्य=प्राप्य, नत्वा । विनिद्रमन्दाररजोऽरुणाङ्गुली-मन्दारस्य पुष्पाणि मन्दाराणि, विनिद्राणि च तानि मन्दाराणि, विनिद्रमन्दाराणि तेषां यद्रजः, तेनारुणाः अङ्गुलयः ययोस्तौ=विकसितमन्दारपुष्परेणुरक्ताङ्गुली । करोति=विदधाति ।

सरलार्थः—ऐरावतवाहनः शक्र अपि वृषारूढस्य शिवस्य चरणयोः किरीटालङ्कृतं स्वशिरः धृत्वा प्रणमति, मन्दारपुष्पपरागरक्ताङ्गुली च विदधाति।

हिन्दी—मदस्रावि दिग्गज ऐरावत की सवारी करने वाले देवेन्द्र भी बैल पर सवार होने वाले शिवजी के चरणों पर अपना माथा टेकते हैं तथा मन्दार पुष्पों की परागरज से शिवजी के चरणों की अँगुलियाँ रंग देते हैं ।

टिप्पणी—मन्दार=देवदारु । पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः । सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम् ॥८०॥

विवक्षता दोषमपि च्युतात्मना त्वयैकमीशं प्रति साधु भाषितम् ।
यमामनन्त्यात्मभुवोऽपि कारणं कथं स लक्ष्यप्रभवो भविष्यति ॥८१॥

अन्वयः—च्युतात्मना दोषं विवक्षता अपि त्वया ईशं प्रति एकं साधु भाषिम् । यम् आत्मभुवः अपि कारणम् आमनन्ति सः कथम् लक्ष्यप्रभवः भविषयति ।

व्याख्या—विवक्षतेति । च्युतात्मना-च्युतः आत्मा यस्य सः तेन=पतितस्वभावेन । दोषं=दूषणम् । विवक्षता-वक्तुमिच्छता भावो विवक्षता=कथयितु-

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मभिलषता । अपि । त्वया=भवता । ईशम्=शिवम् प्रति । एकम् वस्तु -अलक्ष्यजन्मता' साधु=समीचीनम् । भाषितम्=कथितम् । यम्=शिवम् । आत्मभुवः-आत्मनैव भवतीति, तस्य=ब्राह्मणः ('ब्रह्मात्मभूः सुरश्रेष्ठः इत्यमरः) । अपि कारणम्=हेतुम् । आमनन्ति=वेदाः उदाहरन्ति ('हेतुर्ना' कारणं बीजं निदानं त्वादिकारणम्' इत्यमरः) । सः=असौ शिवः । कथम्= केन प्रकारेण । लक्ष्यप्रभवः=दृश्यजन्मा । भविष्यति=भविता, न कथमपीत्याशयः ।

सरलार्थः—दुष्टस्वभावेन शिवदोषविवक्षता त्वया केवलं तस्यैको गुणः— 'अलक्ष्यजन्मता' कथितः यं शिवं श्रुतः ब्रह्मणः अपि निदानमुदाहरन्ति, सः शिवः केन प्रकारेण दृश्यजन्मा भविष्यति ।

हिन्दी—दुष्टस्वभाव वाले तुमने वर्णन करते हुए जो अनेक दोष शिवजी के कह डाले उनमें एक बात अलक्ष्यजन्मता (जन्म का भी पत्ता न होना) ठीक ही कही है, जिन शिव जी को ब्रह्मा का सृष्टिकारण वेद बतलाते हैं वह शिव किस प्रकार दृश्यजन्मा हो सकते हैं ॥८१॥

अलं विवादेन यथा श्रुतस्त्वया तथाविधस्तावदशेषमस्तु सः ।
ममात्र भावैकरसं मनः स्थितं न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते ॥८२॥

अन्वयः—(अथवा) विवादेन अलम्, सः त्वया यथा श्रुतः अशेषं तथाविधः अस्तु, मम मनः अत्र भावैकरसं स्थितं, कामवृत्तिः वचनीयम् न ईक्षते ।

व्याख्या—अलमिति । (अथवा) विवादेन अलम्=तर्ककरणं व्यर्थमस्ति । सः=असौ शिवः । त्वया=भवता । यथा=यद्विधः । श्रुतः=आकर्णितः । अशेषम्-नास्ति शेषः यत्र तत्=सम्पूर्णं । तथाविधः=तादृशः । अस्तु=भवतु । (परम्) मम=मे । मनः=चित्तम् । अत्र=शिवे । भावैकरसं=भावे एकः रसः यस्य तत् अभिलाषैकपक्षपाति । स्थितम्=अवस्थितम् । तथाहि—कामवृत्तिः-कामस्य वृत्तिः कामवृत्तिः=स्वेच्छाव्यवहारः । वचनीयम्=निन्दाम् । न ईक्षते=न विचारयति (विवादो व्यवहारः स्यात् । विश्वमशेषं कृत्स्नं समस्तनिखिलानि निःशेषम्' इति चामरः) अत्रार्थान्तरन्यासोऽलंकारः ।

सरलार्थः—अथवा कलहकरणं व्यर्थम् । त्वयाऽसौ शिवः यद्विधः श्रुतः;

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूर्णरूपेण सः तथाविधः अस्तु। किञ्च मम चित्तं तु शिव एवाभिलाषैकपक्षपाति वर्तते। स्वेच्छाव्यवहारो निन्दां न पश्यति।

हिन्दी—अथवा तर्क करना व्यर्थ है। तुमने उन्हें (शिवजी को) जैसा सुना वह बिल्कुल वैसे ही हों परन्तु एकमात्र मेरा मन तो उन्हीं (शिव) में स्थित है। स्वेच्छा-व्यवहार निन्दा का विचार नहीं करता ॥८२॥

निवार्यतामालि ! किमप्ययं बटुः पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः।
न केवलं यो महतोऽपभाषते शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक् ॥८३॥

अन्वयः—हे आलि ! स्फुरितोत्तराधरः पुनः किम् अपि विवक्षुः अयम् वटुः निवार्यताम्, यः महतः अपभाषते न केवलं स एव पापभाक् अपितु तस्मात् यः शृणोति स अपि (पापभाक् भवतीति)।

व्याख्या—निवार्यतामिति ! हे आलि=हे सखि ! ('आलिः सखी वयस्या च' इत्यमरः)। स्फुरितोत्तराधराः-स्फुरितः उत्तरः अधरः यस्य सः=कम्पिताधरोष्ठः। पुनः=भूयः। किम् अपि=किञ्चित्। विवक्षुः=वक्तुमिच्छुः। अयम्=एषः। वटुः=ब्रह्मचारी। निवार्यताम्=दूरीक्रियताम्। यः=यो जनः। महतः=साधुजनान्। अपभाषसे=निन्दति। न केवलं स एव=केवलमसावेव नैव। पापभाक्—पापं भजतीति पापभाक्=पापीयान्। अपितु। तस्मात्=पाविष्ठेन। यः शृणोति=यः आकर्णयति सः अपि पापभाक् भवतीति।

सरलार्थः—हे सखि ! अस्य माणवकस्य स्फुरदोष्ठेन एतदनुमीयते यदयमतोऽप्यधिकं वक्तुकामः अस्ति। अतः एतमाश्रमाद् दूरीक्रियताम्। केवलं निन्दक एव पापभाक न भवति अपितु तस्मात् यः साधुनिन्दावचनानि शृणोति सः अपि पापीयान् भवति।

हिन्दी—हे सखि ! फड़क रहे ओष्ठों वाला यह वटु (माणवक) पुनः कुछ और कहना चाहता है अतः इसे आश्रम से बाहर निकाल दो। साधुजनों की निन्दा करने वाला ही केवल पापभागी नहीं होता, वरन् जो व्यक्ति उससे निन्दावचन सुनता है उसे भी पाप लगता है ॥८३॥

इतो गमिष्याम्यथवेति वादिनी
चचाल बाला स्तनभिन्नवल्कला।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वरूपमास्थाय च तां कृतस्मितः
समाललम्बे वृषराजकेतनः ॥ ८४ ॥

अन्वयः—अथवा 'इतः गमिष्यामि' इति वादिनी स्तनभिन्नवल्कला बाला चचाल । वृषुराजकेतनः च स्वरूपम् आस्थाय कृतस्मितः सन् तां समालम्बे ।

व्याख्या—इत इति । अथवा । इतः=अस्मात् स्थानात् । गमिष्यामि=व्रजिष्यामि । इति=एवम् । वादिनी–वदतीति वादिनी=भाषमाणा । स्तनभिन्न-वल्कला–स्तनाभ्यां भिन्नं वल्कलं यस्याः सा=कुचस्रस्तवल्कला सा पार्वतीबाला, चचाल=गन्तुमारभत । वृषराजकेतनः–वृषाणां राजा वृषराजः=नन्दिकेश्वरः; सः केतनं=ध्वजो यस्य सः=शिवः च । स्वरूपम्=प्रकृतरूपम् । आस्थाय=स्थित्वा । कृतस्मितः–कृतं=विहितं स्मितं=मन्दहसितं येन सः, तथाविधः सन् । ताम्=पार्वतीम् । समाललम्बे=जग्राह ।

सरलार्थः—अथवाऽहं स्वयमेवास्मात् स्थानात् अन्यत्र गमिष्यामि इति कथयित्वा ततश्चचाल तस्याः वक्षःस्थलाञ्चलमपतत् । तदनन्तरं शिवः आत्मनं प्रकृतरूपमास्थाय मन्दहसितः सः तां जग्राह ।

हिन्दी—अथवा 'मैं स्वयं यहाँ से अन्यत्र चली जाऊँगी' ऐसा कहती हुई पार्वती चलने लगी, उनका आंचल खिसक गया था । इतने में वृषराजकेतन शिव ने अपने प्रकृत रूप को धारण कर मन्द मुस्कान करते हुए पार्वती को जाने से रोक लिया ॥ ८४ ॥

अथाकाण्डे शिवस्य प्रत्यक्षीभूते वृत्तमाह—

तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टि-
निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती ।
मार्गाचलव्यतिकराऽऽकुलितेव सिन्धुः
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ॥८५॥

अन्वयः—तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टिः निक्षेपणाय उद्धृतं पदं तथैव उद्वहन्ती शैलाधिराजतनया मार्गाचलव्यतिकराऽऽकुलिता सिन्धुः इव न ययौ न तस्थौ ।

व्याख्या—तमिति । तम्=महादेवम् । वीक्ष्य=दृष्ट्वा । वेपथुमती=

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कम्पयन्ती । सरसाङ्गयष्टिः—रसेन सहिता सरसा, अङ्गमेव यष्टिः अङ्गयष्टिः, सरसा अङ्गयष्टिर्यस्याः सा=स्विन्नगात्रयष्टिः । निक्षेपणाय=अन्यत्र विन्यासाय। उद्धृतम्=उत्क्षिप्तम् । पदम्=चरणम् । ('पदं व्यवसितं त्राणस्थानलक्ष्मांघ्रि-वस्तुषु' इत्यमरः) । तथैव=तेन प्रकारेण । उद्वहन्ती—उद्वहतीति सा उद्वहन्ती =धारयन्ती । शैलाधिराजतनया—शैलानामधिराजः=गिरीशः हिमालय, तस्य तनया=दुहिता पार्वती । मार्गाचलव्यतिकराऽऽकुलिता—मार्गे=पथि अचलः= पर्वतः, तस्य व्यतिकरेण=सम्पर्केण आकुलिता=पराधीना । सिन्धुः=नदीरिव ('देशे नदविशेषेषु शेषेऽब्धौ सिन्धुर्ना सरिद्' इत्यमरः) । न ययौ=न गतवती। नैव तस्थौ=न चातिष्ठत्, किंकर्त्तव्यविमूढा जातेति । अत्रोपमालङ्कारः। वसन्ततिलकावृत्तम । तद्यथा—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।

सरलार्थः—भगवती पार्वती शिवं समक्षं दृष्ट्वा स्वेष्टदेवदर्शनकुतूहलात् हर्षवशाच्च कम्पितवती । तस्याः शरीरं प्रस्वेदक्लिन्नं जातम् । अन्यत्र गन्तुमुद्यता शैलसुता परवशीभूता नदीव गन्तुं न शशाक, गमनोद्यमाच्च नैव विरराम ।

हिन्दी—शिवजी को सामने खड़ा देखकर काँपती हुई पसीने से भीगी, रखने के लिए उठाये हुए पाँवों को उसी प्रकार शैलराजसुता पार्वती न तो आगे बढ़ा सकी और न रोक ही सकी जैसे प्रवाहपथ में सहसा पहाड़ आ जाने से नदी न तो आगे बढ़ पाती है और न रुक ही सकती है ॥ ८५ ॥

अथ महादेवस्तां प्राह—

अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि ! तवास्मि दासः
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ ।
अह्नाय सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज
क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते ॥ ८६ ॥

अन्वयः—'हे अवनताङ्गि ! अद्यप्रभृति तव तपोभिः क्रीतः दासः अस्मि' इति चन्द्रमौलौ वादिनि सति सा अह्नाय नियमजं क्लमम् उत्ससर्ज । हि क्लेशः फलेन पुनः नवतां विधत्ते ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याख्या—अद्येति । हे अवनताङ्गि-अवनतमङ्गं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ= हे नम्रशरीरे ! अद्यप्रभृति=अद्यदिवसादारभ्य । तव=ते । तपोभिः=तपश्चरणैः । क्रीतः=आत्मवशीकृतः । दासः=सेवकः । अस्मि=सञ्जातः अस्मि । इति= एवम् । चन्द्रमौलौ–चन्द्रः मौलौ यस्य सः तस्मिन्=शिवे । वादिनि—वदतीति वादी, तस्मिन् सति । सा=पार्वती । अह्नाय=सपदि ('स्रग्झटित्यञ्जसाऽह्नाय द्राङ्मंक्षुसपदि द्रुते' इत्यमरः) । नियमजम्–नियमाज्जातं नियमजं, तत्=तपस्यादिजातम् । क्लमम्=क्लेशम् । उत्ससर्ज=विसस्मार । हि=यतः । क्लेशः=दुःखम् । फलेन=फलसिद्धचा । पुनः=भूयः । नवतां=नूतनताम् । विधत्ते=धारयति । अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

सरलार्थः—हे अनवतशरीरे ! अद्यतोऽहं तपोभिः तवाधीनः सेवकः सञ्जातः अस्मि । एवं चन्द्रशेखरे कथयति सति पार्वती सपदि तपोजातं क्लेशं तत्याज । यतः क्लेशः फलसिद्धचा पुनर्नवीनतां धारयति ।

हिन्दी—हे विनयशालिनि ! आज से मैं तुम्हारी तपस्या द्वारा पराधीन कर लिया गया हूँ । इस प्रकार भगवान् शिव के कहने पर पार्वती ने शीघ्र यमनियम (तपस्या) से उत्पन्न हुए क्लेश को छोड़ दिया । क्योंकि क्लेश फलसिद्धि से पुनः नवीनता धारण कर लेता है ॥ ८६ ॥

इति महाकविकालिदासकृतकुमारसम्भवस्य

पं० परमेश्वरदीनपाण्डेयव्याख्यातस्य सुधासंस्कृतहिन्दीव्याख्याद्वयोपेतस्य पञ्चमः सर्गः ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पञ्चमसर्गगताः सूक्तयः

क्रमः		श्लोकाङ्कः
१.	प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ।।	१
२-	पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः ।।	४
३.	क ईप्सितार्थं स्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ।।	५
४.	न षट्पदश्रेणिभिरेव पंकजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते ।।	९
५:	न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते ।।	१६
६.	भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रियाः ।।	३१
७.	शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ।।	३३
८,	सङ्गतं मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते ।।	३९
९.	कः करं प्रसारयेत् पन्नगरत्नसूचये ।।	४३
१०.	न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ।।	४५
११.	मनोरथानामगतिर्न विद्यते ।।	६४
१२.	द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् ।।	७५
१३.	न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते ।।	८२
१४.	न केवलं यो महतोपभाषते शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक् ।	८३
१५.	क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते ।।	८६

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पञ्चमसर्गस्थश्लोकानुक्रमणिका

श्लोकाः	श्लोकांकाः
१ अकिञ्चनः सन् प्रभवः सः सम्पदां	७७
२ अगूढसद्भावमितीङ्गितज्ञया	६२
३ अतोऽत्र किञ्चिद्भवतीं बहुक्षमां	४०
४ अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान्	१४
५ अथाग्रहस्ते मुकुलीकृताङ्गुलौ	६३
६ अथाजिनाषाढधरः प्रगल्भवाक्	३०
७ अथानुरूपाभिनिवेशतोषिणा	७
८ अथाहवर्णी विदितो महेश्वरः	६५
९ अद्य प्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि	८६
१० अनेन धर्मः सविशेषमद्य मे	३८
११ अपि क्रियार्थंसुलभं समित्कुशं	३३
१२ अपि त्वदावर्जितवारिसम्भृत	३४
१३ अपि प्रसन्नं हरिणेषु ते मनः	३५
१४ अवस्तु निर्बन्धपरे कथं नु ते	६६
१५ अवैमि सौभाग्यमदेन वञ्चित	४९
१६ अयाचितोपस्थितमम्बुकेवलं	२२
१७ अयुक्तरूपं किमतः परं वद	६९
१८ अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिता	१५
१९ अलं विवादेन यथाश्रुतस्त्वया	८२
२० अलभ्यशोभाभिभवेयमाकृतिः	४३
२१ असम्पदस्तस्य वृषेण गच्छता	८०
२२ असह्यहुङ्कारनिवर्तितः पुरा	५४
२३ अहो ! स्थितः कोऽपि तवेप्सिते युवा	४७
२४ इति द्विजातौ प्रतिकूलवादिनि	७४
२५ इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुतां	५
२६ इति प्रतिश्याभिहिताद्विजन्मना	५१
२७ इतो गमिष्यामथवेति वादिनी	८४
२८ इयं च तेऽन्या पुरतो विडम्बना	७०
२९ इयं महेन्द्रप्रभृतीनधिश्रियः	५३
३० इयेष साकर्तुमवन्ध्यरूपतां	२
३१ उपात्तवर्णे चरिते पिनाकिनः	५६
३२ उवाच चैनं परमार्थतो हर	७५
३३ कदाचिदासन्नसखीमुखेन सा	६
३४ किमित्यपास्याभरणानि यौवने	४४
३५ कियच्चिरं भ्राम्यति गौरि ! विद्यते	५०
३६ कुले प्रसूतिः प्रथमस्य वेधसः	४१
३७ कृताभिषेकां हुतजातवेदसं	१६
३८ क्लमं ययौ कन्दुकलीलयाऽपि या	१९
३९ चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः	६८
४० तथेति तप्तं सवितुर्गभस्तिमान्	८१
४१ तथा समक्षं दहता मनोभवं	१
४२ तदङ्गसंसर्गमवाप्य कल्पते	७९
४३ तदाप्रभृत्युन्मदना पितुर्गृहे	५५
४४ तमातिथेयी बहुमानपूर्वया	३१
४५ तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टिः	८५
४६ त्रिभागशेषासु निशासु च क्षणं	५७
४७ त्वमेव तावत्परिचिन्तय स्वयम्	६७

श्लोकाः	श्लोकांकाः
४८ द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां	७१
४९ द्रुमेषु सख्या कृतजन्मसु स्वयम्	६०
५० दिवं यदि प्रार्थयसे वृथा श्रमः	४५
५१ निकामतप्ता विविधेन वह्निना	२३
५२ निवर्तयास्मादसदीप्सितात्मना	७३
५३ निवार्य साऽत्यन्तहिमोत्करानिला	२६
५४ निवेदितं निःश्वसितेन सोष्मणा	४६
५५ निशम्य चैनां तपसे कृतोद्यमां	३
५६ न वेद्मि सा प्रार्थितदुर्लभः कदा	६१
५७ निवार्यतामालि किमप्ययं वटुः	८३
५८ प्रतिक्षणं सा कृतरोमविक्रियां	१०
५९ प्रयुक्तसत्कारविशेषमात्मना	३९
६० पुनर्ग्रहीतुं नियमस्थया तया	१३
६१ वपुः विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता	७२
६२ विकीर्णसप्तर्षिवलिप्रहासिभिः	३७
६३ विधिप्रयुक्तः प्रतिगृह्य सत्क्रियां	३२
६४ विपत्प्रतीकारपरेण मंगलं	७६
६५ विवक्षता दोषमपि च्युतात्मना	८१
६६ विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगिना	७८
६७ विरधिसत्त्वोज्झितपूर्वमत्सरं	१७
६८ विमुच्य साहारमहार्यनिश्चया	८
७९ विसृष्टरागादधरान्निवर्तितः	११
७० भनत्यनिष्ठादपि नामदुःसहात्	४२
७१ महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतः	१२
७२ मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवताः	४
७३ मुनिव्रतैस्त्वामतिमात्रकर्षितां	४८
७४ मुखेन सा पद्मसुगन्धिना निशि	२७
७५ मृणालिकापेलवमेवमादिभिः	२९
७६ यथा प्रसिद्धैर्मधुरं शिरोरुहै	९
७७ यथाश्रुतं वेदविदांवर ! त्वया	६४
७८ यदा च तस्याधिगमे जमत्पतेः	५९
७९ यदा फलं पूर्वतपः समाधिना	१८
८० यदा बुधैः सर्वगतस्त्वमुच्यसे	५८
८१ यदुच्यते पार्वति ! पापवृत्तये	३६
८० शिलाशयां तामनिकेतवासिनीं	२५
८३ शुचौ चतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजां	२०
८४ सखी तदीया तमुवाच वर्णिनं	५२
८५ स्थिता स्वयं पक्ष्मसु ताडिताधरा	२४
८६ स्वयं विशीर्णा द्रुमपर्णवृत्तिता	२८

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परीक्षोपयोगी छात्रहितकारी विशिष्ट प्रकाशन

मेघदूतरहस्यम् (प्रश्नोत्तरी) । सन्दर्भ-प्रसङ्ग सहित सान्वय व्याख्या १०-००
साहित्यदर्पणादर्श: । साहित्यदर्पणस्थ-प्रष्टव्यस्थलीय-प्रश्नोत्तरी २०-००
मृच्छकटिकदर्पण: । प्रश्नोत्तरी । डा० जमुना पाठक २०-००
ध्वन्यालोकदर्पणम् । ध्वन्यालोकस्थ-अनुभूत-प्रष्टव्यप्रश्नोत्तरी ३० ००
स्वरवैदिकप्रश्नोत्तरी । सिद्धान्तकौमुदीय स्वरवैदिकप्रकरण-प्रश्नो० २०-००
परमलघूकला । परमलघुमञ्जूषा प्रष्टव्यस्थलीय प्रश्नोत्तरी १२-००
महाभाष्यप्रकाश: । नवाह्निकमहाभाष्य-प्रष्टव्य-प्रश्नोत्तरी १५-००
मुक्तावली-तत्त्वालोक: । मुक्तावली-प्रष्टव्यस्थलीय-प्रश्नोत्तरी १५-००
सिद्धान्तकौमुदी-सोत्तराप्रश्नावली । १-४ भाग प्रश्नो० । प० रामचन्द्र झा ८५-००
सोत्तरा प्रथमा-प्रश्नावली । लघुकौमुदी-प्रष्टव्य-प्रश्नोत्तरी । पं० रामचन्द्र झा ३०-००
रघुवंशप्रश्नोत्तरी । सन्दर्भ-प्रसंग-सहित सान्वय प्रश्नोत्तरी १-३ १०-००
उत्तररामचरितरहस्यम् । (प्रश्नोत्तरी) डा० जमुना पाठक १०-००
रूपचन्द्रिका । सर्वाधिक धातुशब्दरूपसंग्रह । पं० रामचन्द्र झा ४०-००
धातुरूपावली । प्रष्टव्यधातुरूप-संग्रह । पं० रामचन्द्र झा ५-००
शब्दरूपावली । प्रष्टव्यशब्दरूप-संग्रह । पं० रामचन्द्र झा ५-००
स्वप्नवासवदत्तम् । संस्कृत-हिन्दी व्याख्या । डा. बालगोविन्द झा २५-००
रत्नावलीनाटिका । संस्कृत-हिन्दी व्याख्या । डा. बालगोविन्द झा ३०-००
अविमारकम् । संस्कृत-हिन्दी सान्वय व्याख्या । डा. बालगोविन्द झा २५-००
वेणीसंहारनाटकम् । 'कमलेश्वरी' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या । डा. बालगोविन्द झा ५०-००
विक्रमोर्वशीयम् । संस्कृत-हिन्दी-व्याख्या । विन्ध्येश्वरीप्रसादमिश्र ४०-००
कर्पूरमञ्जरी । 'सुधा' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या । परमेश्वरदीनपाण्डेय २५-००
मृच्छकटिकम् । 'भावप्रकाशिका' संस्कृत-हिन्दी टीका । डा० जयशङ्करलाल त्रिपाठी १००-००
अभिषेकनाटकम् । संस्कृत-हिन्दी 'शशिप्रभा' व्याख्या । जमुना पाठक २०-००

प्राप्तिस्थानम्-कृष्णदास अकादमी, पो० बा० १११८, वाराणसी-२२१००१